अक्तूबर, 2023

I.S.S.N. 2457-0494

उच्चतम न्यायालय
निर्णय पत्रिका

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

संपादक-मंडल

डा. रीटा वशिष्ट,
सचिव, विधायी विभाग

श्री उदय कुमारा,
अपर सचिव, विधायी विभाग,
(विभागाध्यक्ष) वि.सा.प्र.

डा. अनुराग दीप, एसोसिएट प्रोफेसर,
भारतीय विधि संस्थान

डा. आर्येन्दु द्विवेदी,
प्राचार्य, मां वैष्णों देवी ला कालेज
फैजाबाद रोड, चिनहट, लखनऊ, उ.प्र.

श्री कुलदीप चौहान,
चेयरमैन, एस.आर.सी. ला कालेज
129, सेक्टर-1, मंगल पाण्डेय नगर,
मेरठ, उ.प्र.

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
सेवानिवृत्त प्रधान संपादक,
वि.सा.प्र.

श्री दयाल चन्द ग्रोवर,
सेवानिवृत्त उप-संपादक,
वि.सा.प्र.

श्री कमला कान्त,
प्रधान संपादक

श्री अविनाश शुक्ला,
संपादक

श्री असलम खान,
संपादक

श्री पुण्डरीक शर्मा,
संपादक

उप-संपादक : सर्वश्री महीपाल सिंह, जसवन्त सिंह, जाहन्वी शेखर शर्मा और अमर्त्य हेम विप्र पाण्डेय

ISSN 2457-0494

कीमत : **डाक-व्यय सहित**

एक प्रति : ` 195/-

वार्षिक : ` 2,100/-

© 2023 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रधान संपादक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

आई.एस.एस.एन. 2457-0494

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

अक्तूबर, 2023 अंक - 10

प्रधान संपादक

कमला कान्त

संपादक

अविनाश शुक्ला

[2023] 4 उम. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन

विधायी विभाग

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

Online selling of law Patrikas/Books is available on

Website → https://bharatkosh.gov.in/product/product

विक्रय कार्यालय : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001. दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in

संपादकीय

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका प्रतिमाह आपके अवलोकनार्थ उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित प्रतिवेद्य निर्णय, जो न्यायाधीशों, अधिवक्ताओं, विधि छात्रों और अकादमीशियनों के लिए महत्वपूर्ण होते हैं, का प्रकाशन करता है । आप लोगों से प्राप्त सुझावों के आधार पर हमको अपनी पत्रिका की गुणवत्ता सुधारने और अपने कार्य को और अधिक निखारने की शक्ति प्राप्त होती है । कृपया अपने अमूल्य सुझावों से हमें अवगत कराते हैं और हमारा मार्गदर्शन करते रहें ।

क्या कोई उच्च न्यायालय पॉक्सो अधिनियम के अधीन गुरुतर प्रवेशन लैंगिक हमले के किसी मामले में अभियुक्त द्वारा उसकी दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील किए जाने पर विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा किए गए न्यूनतम अवधि के कारावास (10 वर्ष) को कम (7 वर्ष) कर सकता है । इसी प्रश्न पर विचार करते हुए माननीय उच्चतम न्यायालय ने **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **सोनू कुशवाहा** [2023] 4 उम. नि. प. 1 वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि अभियुक्त द्वारा बारह वर्ष से कम आयु के बालक पर प्रवेशन लैंगिक हमला करने के कारण धारा 5 का खंड (ड) लागू होने पर वह गुरुतर प्रवेशन लैंगिक हमला करने का दोषी है और धारा 6 की स्पष्ट भाषा को देखते हुए न्यायालय के पास न्यूनतम दंडादेश अधिरोपित करने के सिवाय कोई विकल्प नहीं है, इसलिए अभियुक्त के दंडादेश को दस वर्ष से कम करके सात वर्ष करने वाले उच्च न्यायालय के निर्णय को कायम नहीं रखा जा सकता ।

यदि विधिविरुद्ध जमाव करके लाठियों और पिस्तौलों से लैस होकर हमला करके हत्या किए जाने के मामले में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में नाम दर्ज कराए जाने के बावजूद आरोप पत्र में हमलावरों का नाम हटा दिया जाता है और इत्तिलाकर्ता द्वारा विचारण के दौरान उपरोक्त अभियुक्तों को समन किए जाने हेतु आवेदन किया जाता है तो क्या ऐसा अतिरिक्त अभियुक्त अन्वेषण में निर्दोष पाए जाने के आधार पर स्वयं को विचारण से दूर रखने के लिए हकदार हो जाता है । इसी प्रश्न पर

विचार करते हुए माननीय उच्चतम न्यायालय ने **संदीप कुमार** बनाम **हरियाणा राज्य और एक अन्य** [2023] 4 उम. नि. प. 11 वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि जहां घटना में सम्मिलित हमलावर विधिविरुद्ध जमाव के सदस्य के रूप में घटनास्थल पर मौजूद पाया गया हो और अपराध कारित होने के पश्चात् घटनास्थल से भाग गया हो, वहां दंड संहिता की धारा 149 के अधीन अपराध को लागू करने के लिए अभियुक्त की विनिर्दिष्ट व्यक्तिगत भूमिका तात्विक नहीं है और उसका केवल विधिविरुद्ध जमाव का सदस्य होना पर्याप्त है और उच्च न्यायालय द्वारा धारा 319 के अधीन आवेदन पर विचार करने के प्रक्रम पर साक्ष्य के गुणागुण पर विचार नहीं किया जा सकता और इसका मूल्यांकन केवल विचारण के दौरान किया जाएगा, इसलिए अभियुक्त को आरोप मुक्त नहीं किया जा सकता ।

इस अंक में पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 को भी ज्ञानार्थ प्रकाशित किया जा रहा है । इस संपूर्ण अंक का परिशीलन करने के पश्चात् आपकी बहुमूल्यक प्रतिक्रियाएं ईप्सित हैं ।

पुंडरीक शर्मा
संपादक

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

अक्तूबर, 2023

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
उत्तर प्रदेश राज्य **बनाम** सोनू कुशवाहा	1
केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो **बनाम** श्याम बिहारी और अन्य	25
मो. सिद्दीक (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि **बनाम** महंत सुरेश दास और अन्य	369
संदीप कुमार **बनाम** हरियाणा राज्य और एक अन्य	11

संसद् के अधिनियम

पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	1 – 18

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)

– धारा 319 [सपठित दंड संहिता, 1860 की धारा 458, 460, 323, 302, 148 और 149] – अपराध के दोषी प्रतीत होने वाले अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने की शक्ति – कतिपय हमलावरों द्वारा इत्तिलाकर्ता के परिवार पर लाठियों और पिस्तौलों से लैस होकर हमला किया जाना और उसके पिता की हत्या किया जाना – घटना में अंतर्ग्रस्त हमलावरों में से तीन हमलावरों का प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में नाम होने के बावजूद आरोप पत्र में नाम न होना – इत्तिलाकर्ता-प्रत्यक्षदर्शी साक्षी द्वारा विचारण के दौरान अतिरिक्त अभियुक्तों को समन करने के लिए धारा 319 के अधीन आवेदन किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा आवेदन मंजूर किया जाना – समन किए गए अतिरिक्त अभियुक्तों में से एक (प्रत्यर्थी सं. 2) द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा उसे अन्वेषण में निर्दोष पाए जाने और आयुध का प्रयोग न किए जाने तथा घटनास्थल से भाग जाने के आधार पर पुनरीक्षण आवेदन को मंजूर किया जाना और विचारण न्यायालय के आदेश को अपास्त किया जाना – शिकायतकर्ता-प्रत्यक्षदर्शी साक्षी द्वारा उच्चतम न्यायालय में अपील – जहां घटना में सम्मिलित हमलावर विधिविरुद्ध जमाव के सदस्य के रूप में घटनास्थल पर मौजूद पाया गया हो और अपराध कारित होने के पश्चात् घटनास्थल से भाग गया हो, वहां दंड संहिता की धारा 149 के अधीन

पृष्ठ संख्या

अपराध को लागू करने के लिए अभियुक्त की विनिर्दिष्ट व्यक्तिगत भूमिका तात्विक नहीं है और उसका केवल विधिविरुद्ध जमाव का सदस्य होना पर्याप्त है और उच्च न्यायालय द्वारा धारा 319 के अधीन आवेदन पर विचार करने के प्रक्रम पर साक्ष्य के गुणागुण पर विचार नहीं किया जा सकता और इसका मूल्यांकन केवल विचारण के दौरान किया जाएगा, इसलिए उच्च न्यायालय के निर्णय को कायम नहीं रखा जा सकता ।

संदीप कुमार बनाम **हरियाणा राज्य और एक अन्य** 11

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45)

– धारा 302/34 – हत्या – रात्रि गश्त ड्यूटी पर तैनात पुलिस कर्मियों द्वारा अभिकथित रूप से मृतक और उसके अन्य साथियों पर गोली चलाया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा पुलिस कर्मियों को दोषमुक्त किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि किया जाना – दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील – मामले के तथ्यों और परिस्थितियों तथा अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य से यह दर्शित होने पर कि अभियोजन साक्षी अभियुक्तों में से किसी की न तो शनाख्त कर सके थे और न ही उन्होंने यह अभिसाक्ष्य दिया कि विचारण का सामना कर रहे पुलिस कर्मी वही हैं जो अपराध कारित करने में अंर्तग्रस्त थे तथा मृतक की मृत्यु जिस बंदूक की गोली से पहुंची क्षति से हुई पायी गई थी वह गोली पुलिस कर्मियों को जारी की गई राइफलों से नहीं चलाई गई थी, इसलिए परिस्थितियों की श्रृंखला इतनी पूर्ण न होने पर कि सभी मानवीय अधिसंभव्यताओं में अपराध अभियुक्तों

पृष्ठ संख्या

द्वारा ही किया गया था किसी और के द्वारा नहीं, अभियुक्तों की दोषमुक्ति में हस्तक्षेप करना उचित नहीं होगा ।

केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो बनाम **श्याम बिहारी और अन्य** 25

लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण (पॉक्सो) अधिनियम, 2012 (2012 का 32)

– धारा 4, 5 और 6 – गुरुतर प्रवेशन लैंगिक हमला – दोषसिद्धि और दंडादेश – अभियुक्त-प्रत्यर्थी द्वारा बारह वर्ष से कम आयु के बालक के मुंह में अपना लिंग डालना और वीर्य छोड़ देना – विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 377 और 506 के साथ-साथ पॉक्सो अधिनियम की धारा 5 के साथ पठित धारा 6 के अधीन गुरुतर प्रवेशन लैंगिक हमले के लिए दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया जाना – अपील में उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्त को धारा 4 के अधीन प्रवेशन लैंगिक हमले का दोषी अभिनिर्धारित करते हुए दस वर्ष के न्यूनतम दंडादेश को कम करके सात वर्ष किया जाना – संधार्यता – अभियुक्त द्वारा बारह वर्ष से कम आयु के बालक पर प्रवेशन लैंगिक हमला करने के कारण धारा 5 का खंड (ड) लागू होने पर वह गुरुतर प्रवेशन लैंगिक हमला करने का दोषी है और धारा 6 की स्पष्ट भाषा को देखते हुए न्यायालय के पास न्यूनतम दंडादेश अधिरोपित करने के सिवाय कोई विकल्प नहीं है, इसलिए अभियुक्त के दंडादेश को दस वर्ष से कम करके सात वर्ष करने वाले उच्च न्यायालय के निर्णय को कायम नहीं रखा जा सकता ।

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम **सोनू कुशवाहा** 1

[2023] 4 उम. नि. प. 1

उत्तर प्रदेश राज्य

बनाम

सोनू कुशवाहा

[2023 की दांडिक अपील सं. 1633]

5 जुलाई, 2023

न्यायमूर्ति अभय एस. ओका और न्यायमूर्ति राजेश बिंदल

लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण (पॉक्सो) अधिनियम, 2012 (2012 का 32) – धारा 4, 5 और 6 – गुरुतर प्रवेशन लैंगिक हमला – दोषसिद्धि और दंडादेश – अभियुक्त-प्रत्यर्थी द्वारा बारह वर्ष से कम आयु के बालक के मुंह में अपना लिंग डालना और वीर्य छोड़ देना – विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 377 और 506 के साथ-साथ पॉक्सो अधिनियम की धारा 5 के साथ पठित धारा 6 के अधीन गुरुतर प्रवेशन लैंगिक हमले के लिए दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया जाना – अपील में उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्त को धारा 4 के अधीन प्रवेशन लैंगिक हमले का दोषी अभिनिर्धारित करते हुए दस वर्ष के न्यूनतम दंडादेश को कम करके सात वर्ष किया जाना – संधार्यता – अभियुक्त द्वारा बारह वर्ष से कम आयु के बालक पर प्रवेशन लैंगिक हमला करने के कारण धारा 5 का खंड (ड) लागू होने पर वह गुरुतर प्रवेशन लैंगिक हमला करने का दोषी है और धारा 6 की स्पष्ट भाषा को देखते हुए न्यायालय के पास न्यूनतम दंडादेश अधिरोपित करने के सिवाय कोई विकल्प नहीं है, इसलिए अभियुक्त के दंडादेश को दस वर्ष से कम करके सात वर्ष करने वाले उच्च न्यायालय के निर्णय को कायम नहीं रखा जा सकता ।

इस अपील के तथ्य इस प्रकार हैं कि प्रत्यर्थी-अभियुक्त को एक बारह वर्ष से कम आयु के बालक के साथ लैंगिक अपराध करने के लिए

भारतीय दंड संहिता की धारा 377 और धारा 506 के अधीन अपराध के साथ-साथ लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 (संक्षेप में 'पॉक्सो अधिनियम') की धारा 6 के साथ पठित धारा 5 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए अभियोजित किया गया था । विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश द्वारा, जो पॉक्सो अधिनियम के अधीन विशेष न्यायाधीश थे, प्रत्यर्थी को भारतीय दंड संहिता के अधीन अपराधों के साथ-साथ पॉक्सो अधिनियम की धारा 6 के अधीन दंडनीय गुरुतर प्रवेशन लैंगिक हमले के अपराध के लिए दोषसिद्ध किया और इस अपराध के लिए जुर्माने सहित दस वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया । अभियुक्त-प्रत्यर्थी द्वारा इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष दांडिक अपील फाइल की गई । उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी पॉक्सो अधिनियम की धारा 4 के अधीन दंडनीय प्रवेशन लैंगिक हमले के अपराध का दोषी है न कि पॉक्सो अधिनियम की धारा 6 के अधीन दंडनीय गुरुतर प्रवेशन लैंगिक हमले के अपराध का और पॉक्सो अधिनियम के अधीन दंडनीय अपराध के लिए उसके मूल दंडादेश को कम करके 5,000/- रुपए के जुर्माने सहित सात वर्ष का कारावास कर दिया गया और केवल इस सीमा तक अपील को मंजूर किया गया । राज्य द्वारा व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस मामले में प्रत्यर्थी ने स्पष्ट रूप से गुरुतर प्रवेशन लैंगिक हमले का अपराध किया है क्योंकि उसने बारह वर्ष से कम आयु के बालक पर प्रवेशन लैंगिक हमला किया है । धारा 5 का खंड (ड) इस मामले में लागू होता है । अपराध कारित करने की तारीख को दस वर्ष का कठोर कारावास गुरुतर प्रवेशन लैंगिक हमले के अपराध के लिए विहित न्यूनतम दंडादेश था । तारीख 16 अगस्त, 2019 से न्यूनतम दंडादेश को बढ़ाकर बीस वर्ष कर दिया गया है । तथापि, संशोधित उपबंध इस मामले को लागू नहीं होगा क्योंकि घटना तारीख 16 अगस्त, 2019 से पूर्व घटी थी । आश्चर्यजनक रूप से, उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि धारा 5 लागू नहीं होती है और प्रत्यर्थी द्वारा किया गया अपराध प्रवेशन लैंगिक हमले के एक कमतर अपराध के प्रवर्ग के अंतर्गत आता है जो पॉक्सो अधिनियम की धारा 4 के अधीन दंडनीय

है । इस प्रकार, उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित स्पष्ट गलती की है कि प्रत्यर्थी द्वारा कारित किया गया कृत्य गुरुतर प्रवेशन लैंगिक हमले का नहीं था । वास्तव में, विशेष न्यायालय ने प्रत्यर्थी को धारा 6 के अधीन दंडित करके और उसे 5,000/- रुपए के जुर्माने सहित दस वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश देकर ठीक किया था । (पैरा 9, 10 और 11)

पॉक्सो अधिनियम विभिन्न प्रकार के बाल शोषण के अपराधों के लिए और अधिक कठिन दंडों का उपबंध करने के लिए अधिनियमित किया गया था और यही कारण है कि बालकों पर लैंगिक हमलों के विभिन्न प्रवर्गों के लिए पॉक्सो अधिनियम की धारा 4, 6, 8 और 10 में न्यूनतम दंड विहित किए गए हैं । इसलिए धारा 6 की स्पष्ट भाषा के आधार पर यह धारा न्यायालय को कोई विवेकाधिकार नहीं देती है और न्यूनतम दंडादेश अधिरोपित करने के सिवाय कोई विकल्प नहीं है जैसा कि विचारण न्यायालय द्वारा किया गया है । जब किसी शास्तिक उपबंध में "से कम का नहीं होगा....." वाक्यांश का प्रयोग किया जाता है तो न्यायालय धारा का उल्लंघन नहीं कर सकते और कमतर दंडादेश अधिरोपित नहीं कर सकते । न्यायालय ऐसा करने के लिए तब तक नि:शक्त हैं जब तक कि कमतर दंडादेश अधिरोपित करने के लिए न्यायालय को समर्थ बनाने हेतु एक विनिर्दिष्ट कानूनी उपबंध न हो । तथापि, हम पॉक्सो अधिनियम में ऐसा कोई उपबंध नहीं पाते हैं । अत:, इस बात के होते हुए भी कि प्रत्यर्थी उच्च न्यायालय द्वारा यथा उपांतरित दंडादेश भुगतने के पश्चात् जीवन में आगे बढ़ गया होगा, उससे कोई नरमी दिखाने का प्रश्न नहीं है । इस तथ्य के अतिरिक्त कि विधि में एक न्यूनतम दंडादेश उपबंधित है, प्रत्यर्थी द्वारा कारित किया गया अपराध बहुत ही जघन्य है जिसके लिए अति कठोर दंड देना आवश्यक है । विपदग्रस्त बालक के मन पर ऐसे अश्लील कृत्य का प्रभाव जीवनभर बना रहेगा । इस प्रभाव से विपदग्रस्त के सुगम विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना लाजिमी है । यह विवादग्रस्त नहीं है कि विपदग्रस्त की आयु घटना के समय पर बारह वर्ष से कम थी । अत: हमारे पास उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय को अपास्त करने और

विचारण न्यायालय के निर्णय को प्रत्यावर्तित करने के सिवाय कोई विकल्प नहीं है । (पैरा 12 और 13)

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2023 की दांडिक अपील सं. 1633.

2018 की दांडिक अपील सं. 5415 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 18 नवंबर, 2021 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री कृष्णानंद पांडेय और हर्ष प्रताप शाही

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री सतीश पांडेय, अब्दुल कादिर और अकबर अली

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अभय एस. ओका ने दिया ।

न्या. ओका – इस अपील में अंतर्वलित एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या प्रत्यर्थी लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 (संक्षेप में 'पॉक्सो अधिनियम') की धारा 6 के अधीन दंडनीय गुरुतर प्रवेशन लैंगिक हमले के अपराध का दोषी है या नहीं ।

2. प्रत्यर्थी-अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में 'भारतीय दंड संहिता') की धारा 377 और धारा 506 तथा पॉक्सो अधिनियम की धारा 6 के साथ पठित धारा 5 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए अभियोजित किया गया था । विद्वान् अष्टम अपर सेशन न्यायाधीश, झांसी ने, जो पॉक्सो अधिनियम के अधीन विशेष न्यायाधीश थे, प्रत्यर्थी को सभी तीनों अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया । प्रत्यर्थी को पॉक्सो अधिनियम की धारा 6 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दस वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया और 5,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने का निदेश दिया । प्रत्यर्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 377 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए सात वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया । भारतीय दंड संहिता की धारा 506 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए उसे एक वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया । अंतिम दो अपराधों के लिए जुर्माना भी अधिरोपित किया गया था ।

3. प्रत्यर्थी ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष 2018 की दांडिक अपील सं. 5415 फाइल की । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी पॉक्सो अधिनियम की धारा 4 के अधीन दंडनीय प्रवेशन लैंगिक हमले के अपराध का दोषी है न कि पॉक्सो अधिनियम की धारा 6 के अधीन दंडनीय गुरुतर प्रवेशन लैंगिक हमले के अपराध का । अत: पॉक्सो अधिनियम के अधीन दंडनीय अपराध के लिए उसके मूल दंडादेश को कम करके 5,000/- रुपए के जुर्माने सहित सात वर्ष का कारावास कर दिया गया । केवल इस सीमा तक अपील को मंजूर किया गया ।

4. यह विवादग्रस्त नहीं है कि अपराध के किए जाने के समय पर विपदग्रस्त की आयु बारह वर्ष से कम थी । मामले के तथ्यों का सारांश उच्च न्यायालय द्वारा आक्षेपित निर्णय के पैरा 3 में दिया गया है, जो इस प्रकार है :–

> "3. संक्षेप में, अभियोजन का पक्षकथन यह है कि शिकायतकर्ता एक्सवाईजेड ने तारीख 26 मार्च, 2016 को चिरगांव, जिला झांसी में अपीलार्थी सोनू कुशवाहा के विरुद्ध एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट उसमें यह कथन करते हुए दर्ज कराई कि तारीख 22 मार्च, 2016 को सायंकाल में लगभग 5.00 बजे अपीलार्थी सोनू कुशवाहा शिकायतकर्ता के मकान पर आया और उसके लगभग 10 वर्षीय पुत्र को हरदौल स्थित मंदिर में ले गया । अपीलार्थी ने शिकायतकर्ता के पुत्र अर्थात् विपदग्रस्त को 20 रुपए दिए और अपने लिंग को चूसने के लिए कहा । अपीलार्थी सोनू कुशवाहा ने अपने लिंग को विपदग्रस्त के मुंह में डाला । उसके पश्चात्, विपदग्रस्त वह 20 रुपए लेकर मकान पर आया । इस पर शिकायतकर्ता के भतीजे संतोष ने विपदग्रस्त से पूछा कि उसे 20 रुपए कहां से मिले, फिर विपदग्रस्त ने उसके साथ घटी संपूर्ण घटना बताई । अपीलार्थी ने विपदग्रस्त को घटना के बारे में किसी व्यक्ति को न बताने की भी धमकी दी थी ।"

उच्च न्यायालय ने पैरा 16 में अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के आधार पर निकाले गए निष्कर्षों को अभिलिखित किया है । पैरा 16 का सुसंगत भाग इस प्रकार है :–

> "16. मामले के साबित किए गए तथ्य यह हैं कि अपीलार्थी ने अपने लिंग को लगभग दस वर्ष आयु के विपदग्रस्त के मुंह में डाला था और उसमें वीर्य छोड़ दिया था .....।"

इस निष्कर्ष को प्रत्यर्थी-अभियुक्त द्वारा प्रश्नगत नहीं किया गया है क्योंकि उसने उच्च न्यायालय के आदेश को चुनौती नहीं दी है । उक्त निष्कर्ष अभिलिखित करने के पश्चात् उच्च न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि प्रत्यर्थी द्वारा कारित किया गया कृत्य प्रवेशन लैंगिक हमले का था जो पॉक्सो अधिनियम की धारा 4 के अधीन दंडनीय है ।

दलीलें

5. अपीलार्थी-उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने हमारा ध्यान पॉक्सो अधिनियम की धारा 3 के खंड (क) के अधीन 'प्रवेशन लैंगिक हमले' की परिभाषा की ओर आकर्षित किया । विद्वान् काउंसेल ने यह भी बताया कि धारा 5 के खंड (ड) के अधीन जो कोई बारह वर्ष से कम आयु के बालक पर प्रवेशन लैंगिक हमला करता है, गुरुतर प्रवेशन लैंगिक हमला कारित करने का दोषी है । अत: उन्होंने दलील दी कि उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करके गलती की है कि धारा 6 लागू नहीं होती है, जो गुरुतर प्रवेशन लैंगिक हमले को लागू होती है ।

6. प्रत्यर्थी-अभियुक्त की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने दलील दी कि प्रत्यर्थी ने उच्च न्यायालय द्वारा यथा उपांतरित सात वर्ष का दंडादेश पहले ही भुगत लिया है । उन्होंने दलील दी कि अब प्रत्यर्थी में पूरी तरह से सुधार हो गया है । उन्होंने यह भी कहा कि प्रत्यर्थी जीवन में आगे बढ़ चुका है और वास्तव में हाल ही में उसका विवाह हुआ है । अत: उन्होंने दलील दी कि इस प्रक्रम पर पॉक्सो अधिनियम की धारा 6 को लागू करना और प्रत्यर्थी को अतिरिक्त कारावास भुगतने के लिए जेल भेजना अन्यायपूर्ण होगा ।

हमारा दृष्टिकोण

7. उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय के पैरा 16, जिसे हमने ऊपर उद्धृत किया है, में अभिलिखित निष्कर्ष की शुद्धता के बारे में कोई विवाद नहीं है । इस संदर्भ में, पॉक्सो अधिनियम की धारा 3 में

सम्मिलित 'प्रवेशन लैंगिक हमला' की परिभाषा का उल्लेख करना आवश्यक है । धारा 3 का खंड (क) इस प्रकार है :–

"**3. प्रवेशन लैंगिक हमला –** कोई व्यक्ति, 'प्रवेशन लैंगिक हमला' करता है, यह कहा जाता है, यदि वह –

(क) अपना लिंग, किसी भी सीमा तक, किसी बालक की योनि, मुंह, मूत्रमार्ग या गुदा में प्रवेश करता है या बालक से उसके साथ या किसी अन्य व्यक्ति के साथ ऐसा करवाता है ; या

(ख) .....

(ग) .....

(घ) .....।"

8. पॉक्सो अधिनियम की धारा 2(क) में उपबंधित है कि 'गुरुतर प्रवेशन लैंगिक हमले' का वही अर्थ है जो धारा 5 में है । अत: हम धारा 5 पर आते हैं जिसमें 'गुरुतर प्रवेशन लैंगिक हमला' को परिभाषित किया गया है । धारा 5 का खंड (ड) इस प्रकार है :–

"**5. गुरुतर प्रवेशन लैंगिक हमला –**

(क) .....

(ख) .....

(ग) .....

(घ) .....

(ङ) .....

(च) .....

(छ) .....

(ज) .....

(झ) .....

(ञ) .....

(ट) .....

(ठ) .....

(ड) जो कोई, बारह वर्ष से कम आयु के किसी बालक पर प्रवेशन लैंगिक हमला करता है ; या

(ढ) .....

(ण) .....

(त) .....

(थ) .....

(द) .....

(ध) .....

(न) .....

(प) ..... वह गुरुतर प्रवेशन लैंगिक हमला करता है, यह कहा जाता है ।"

9. आक्षेपित निर्णय के पैरा 16 में अभिलिखित निष्कर्ष पर विचार करते हुए, इस मामले में स्पष्ट रूप से प्रत्यर्थी ने गुरुतर प्रवेशन लैंगिक हमले का अपराध किया है क्योंकि उसने बारह वर्ष से कम आयु के बालक पर प्रवेशन लैंगिक हमला किया है । धारा 5 का खंड (ड) इस मामले में लागू होता है ।

10. धारा 6, तारीख 16 अगस्त, 2019 को इसके प्रतिस्थापन से पूर्व यथा लागू, इस प्रकार है :–

"**6. गुरुतर प्रवेशन लैंगिक हमले के लिए दंड –** जो कोई, गुरुतर प्रवेशन लैंगिक हमला करेगा वह कठोर कारावास से जिसकी अवधि दस वर्ष से कम की नहीं होगी किंतु जो आजीवन कारावास तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा ।"

अपराध कारित करने की तारीख को दस वर्ष का कठोर कारावास गुरुतर प्रवेशन लैंगिक हमले के अपराध के लिए विहित न्यूनतम दंडादेश था । तारीख 16 अगस्त, 2019 से न्यूनतम दंडादेश को बढ़ाकर बीस वर्ष कर

दिया गया है । तथापि, संशोधित उपबंध इस मामले को लागू नहीं होगा क्योंकि घटना तारीख 16 अगस्त, 2019 से पूर्व घटी थी ।

11. आश्चर्यजनक रूप से, उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि धारा 5 लागू नहीं होती है और प्रत्यर्थी द्वारा किया गया अपराध प्रवेशन लैंगिक हमले के एक कमतर अपराध के प्रवर्ग के अंतर्गत आता है जो पॉक्सो अधिनियम की धारा 4 के अधीन दंडनीय है । इस प्रकार, उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए स्पष्ट गलती की है कि प्रत्यर्थी द्वारा कारित किया गया कृत्य गुरुतर प्रवेशन लैंगिक हमले का नहीं था । वास्तव में, विशेष न्यायालय ने प्रत्यर्थी को धारा 6 के अधीन दंडित करके और उसे 5,000/- रुपए के जुर्माने सहित दस वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश देकर ठीक किया था ।

12. पॉक्सो अधिनियम विभिन्न प्रकार के बाल शोषण के अपराधों के लिए और अधिक कठिन दंडों का उपबंध करने के लिए अधिनियमित किया गया था और यही कारण है कि बालकों पर लैंगिक हमलों के विभिन्न प्रवर्गों के लिए पॉक्सो अधिनियम की धारा 4, 6, 8 और 10 में न्यूनतम दंड विहित किए गए हैं । इसलिए धारा 6 की स्पष्ट भाषा के आधार पर यह धारा न्यायालय को कोई विवेकाधिकार नहीं देती है और न्यूनतम दंडादेश अधिरोपित करने के सिवाय कोई विकल्प नहीं है जैसा कि विचारण न्यायालय द्वारा किया गया है । जब किसी शास्तिक उपबंध में "से कम का नहीं होगा....." वाक्यांश का प्रयोग किया जाता है तो न्यायालय धारा का उल्लंघन नहीं कर सकते और कमतर दंडादेश अधिरोपित नहीं कर सकते । न्यायालय ऐसा करने के लिए तब तक निशक्त हैं जब तक कि कमतर दंडादेश अधिरोपित करने के लिए न्यायालय को समर्थ बनाने हेतु एक विनिर्दिष्ट कानूनी उपबंध न हो । तथापि, हम पॉक्सो अधिनियम में ऐसा कोई उपबंध नहीं पाते हैं । अतः, इस बात के होते हुए भी कि प्रत्यर्थी उच्च न्यायालय द्वारा यथा उपांतरित दंडादेश भुगतने के पश्चात् जीवन में आगे बढ़ गया होगा, उससे कोई नरमी दिखाने का प्रश्न नहीं है । इस तथ्य के अतिरिक्त कि विधि में एक न्यूनतम दंडादेश उपबंधित है, प्रत्यर्थी द्वारा कारित किया गया अपराध बहुत ही जघन्य है जिसके लिए अति कठोर दंड देना आवश्यक है । विपदग्रस्त बालक के मन पर ऐसे अश्लील कृत्य का

प्रभाव जीवनभर बना रहेगा । इस प्रभाव से विपदग्रस्त के सुगम विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना लाजिमी है । यह विवादग्रस्त नहीं है कि विपदग्रस्त की आयु घटना के समय पर बारह वर्ष से कम थी । अत: हमारे पास उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय को अपास्त करने और विचारण न्यायालय के निर्णय को प्रत्यावर्तित करने के सिवाय कोई विकल्प नहीं है ।

13. तद्नुसार, यह अपील मंजूर की जाती है । इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा 2018 की दांडिक अपील सं. 5415 में तारीख 18 नवंबर, 2021 को पारित किया गया आक्षेपित निर्णय और आदेश अभिखंडित और अपास्त किया जाता है तथा विद्वान् अष्टम अपर सेशन न्यायाधीश, विशेष न्यायाधीश पॉक्सो अधिनियम, झांसी द्वारा 2016 के विशेष सेशन विचारण सं. 134 में तारीख 24 अगस्त, 2018 को पारित किए गए निर्णय और आदेश को प्रत्यावर्तित किया जाता है । तद्नुसार, उच्च न्यायालय के समक्ष फाइल की गई 2018 की दांडिक अपील सं. 5415 खारिज हो जाती है । प्रत्यर्थी पॉक्सो अधिनियम की धारा 6 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दस वर्ष का कठोर कारावास भुगतेगा और 5,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करेगा । हम प्रत्यर्थी को अधिकतम एक माह के भीतर पॉक्सो अधिनियम के अधीन विद्वान् विशेष न्यायाधीश के समक्ष अभ्यर्पण करने का निदेश देते हैं । उसके अभ्यर्पण करने पर विशेष न्यायालय प्रत्यर्थी को पॉक्सो अधिनियम की धारा 6 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए शेष दंडादेश को भुगतने के लिए कारागार में भेजेगा । आज से एक माह के भीतर अभ्यर्पण करने में प्रत्यर्थी के असफल रहने पर विशेष न्यायालय तुरंत प्रत्यर्थी के विरुद्ध एक अजमानतीय वारंट जारी करेगा और सुनिश्चित करेगा कि प्रत्यर्थी को पॉक्सो अधिनियम की धारा 6 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए शेष दंडादेश भुगतने के लिए कारागार के सुपुर्द किया जाए । इस निर्णय की एक प्रति शीघ्र विशेष न्यायालय को भेजी जाएगी ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.

[2023] 4 उम. नि. प. 11

केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो

बनाम

श्याम बिहारी और अन्य

[2013 की दांडिक अपील सं. 413]

17 जुलाई, 2023

न्यायमूर्ति बी. वी. नागरत्ना और न्यायमूर्ति मनोज मिश्रा

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302/34 – हत्या – रात्रि गश्त ड्यूटी पर तैनात पुलिस कर्मियों द्वारा अभिकथित रूप से मृतक और उसके अन्य साथियों पर गोली चलाया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा पुलिस कर्मियों को दोषमुक्त किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि किया जाना – दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील – मामले के तथ्यों और परिस्थितियों तथा अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य से यह दर्शित होने पर कि अभियोजन साक्षी अभियुक्तों में से किसी की न तो शनाख्त कर सके थे और न ही उन्होंने यह अभिसाक्ष्य दिया कि विचारण का सामना कर रहे पुलिस कर्मी वही हैं जो अपराध कारित करने में अंर्तग्रस्त थे तथा मृतक की मृत्यु जिस बंदूक की गोली से पहुंची क्षति से हुई पायी गई थी, वह गोली पुलिस कर्मियों को जारी की गई राइफलों से नहीं चलाई गई थी, इसलिए परिस्थितियों की श्रृंखला इतनी पूर्ण न होने पर कि सभी मानवीय अधिसंभव्यताओं में अपराध अभियुक्तों द्वारा ही किया गया था किसी और के द्वारा नहीं, अभियुक्तों की दोषमुक्ति में हस्तक्षेप करना उचित नहीं होगा ।

इस अपील के तथ्य इस प्रकार हैं कि तारीख 24 जून, 1987 की रात्रि में राज कुमार बालियान (संक्षेप में "मृतक") की हत्या कर दी गई थी । प्रमोद कुमार त्यागी नामक व्यक्ति (अभि. सा. 6) द्वारा, अन्य बातों के साथ-साथ, यह अभिकथन करते हुए एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई कि जब वह और सुदीप (अभि. सा. 3) एक स्कूटर पर और

राज कुमार बालियान (मृतक) एक अन्य स्कूटर पर एक विवाह में सम्मिलित होने के लिए मुजफ्फरनगर से मीरापुर जा रहे थे, तो भटोडा मोड़ के निकट लगभग 9.30 बजे अपराह्न में स्कूटर की रोशनी में उन्होंने सड़क पर तीन पुलिस कर्मियों को खड़े देखा । उनमें से एक के पास डंडा (छड़ी) था जबकि अन्य दो राइफलें लिए हुए थे । जिस व्यक्ति के पास डंडा था उसने उन पर टार्च से रोशनी डाली । परिणामस्वरूप, उनका अपने-अपने स्कूटरों से नियंत्रण खो गया और लड़खड़ाकर गिर गए । पुलिस कर्मियों में से एक ने गोली चलाकर मार देने का आह्वान किया । परिणामत:, चलाई गई गोलियां मृतक को लगी, जो घटनास्थल पर गिर गया । तथापि, वे बचकर गांव जाने में सफल रहे । जानकारी मिलने पर ग्रामवासी घटनास्थल पर पहुंचे और पुलिस भी पहुंची । पुलिस की मौजूदगी में मृतक को अस्पताल ले जाया गया किंतु क्षतियों के कारण उसकी रास्ते में ही मृत्यु हो गई । घटना का एक अन्य वृत्तांत तारीख 25 जून, 1987 को महेन्द्र सिंह नामक व्यक्ति की प्रेरणा पर दर्ज किया गया जिसमें, अन्य बातों के साथ-साथ यह अभिकथन किया गया कि तारीख 26 मई, 1987 को गांव में एक लूट की घटना घटी थी जिसमें एक व्यक्ति की मृत्यु हो गई थी । चूंकि अपराधी नियमित रूप से गांव में आ रहे थे इसलिए तब से ग्रामवासियों के साथ-साथ पुलिस द्वारा लगातार निगरानी की जा रही थी, जो क्षेत्र में गश्त कर रहे थे । जब तीन पुलिस कांस्टेबल गांव में ग्रामवासियों के साथ गश्त और निगरानी कर रहे थे तब लगभग 9.00 बजे अपराह्न में एक व्यक्ति आया और शोर मचाया कि 5-6 अपराधी मोटरसाइकिलों और स्कूटरों पर गांव में आने वाले हैं । यह सूचना प्राप्त होने पर ग्रामवासी और पुलिस वाले चौकन्ना हो गए । लगभग 9.30 बजे अपराह्न में एक मोटरसाइकिल आई और भटोडा मोड़ से थोड़ा आगे आकर रुकी । उसके पश्चात् तेज गति से दो स्कूटर आए । जब टॉर्च की रोशनी डाली गई और स्कूटरों को रुकने का संकेत किया गया, तो स्कूटर पर सवार व्यक्तियों ने ग्रामवासियों और पुलिस वालों को मारने की दृष्टि से गोली चलाई । तथापि, एक स्कूटर लड़खड़ा गया और दूसरा रुक गया । तथापि,

अपराधी गोली चलाते हुए भागने लगे । परिणामस्वरूप, पुलिस और ग्रामवासियों द्वारा जवाब में गोली चलाई गई । अपराधियों में से एक का पीछा किया गया और ग्रामवासियों द्वारा धर-दबोचा गया । उस समय पर, पुलिस थाना सिखेरा से एक अम्बेसडर कार में एक निरीक्षक पहुंचा । उसने अपराधी से परिप्रश्न किए । बाद में, कई सारे ग्रामवासी पहुंचे और सूचित किया कि पकड़ा गया व्यक्ति राज कुमार, अधिवक्ता है । उसके पश्चात्, राज कुमार को अस्पताल ले जाया गया । उसी समय पर, घटनास्थल की तलाशी ली गई और कारतूसों के दो खाली खोल बरामद किए गए । पूर्वोक्त दोनों मामलों का अन्वेषण सीबी-सीआईडी को सौंपा गया और बाद में आगे अन्वेषण के लिए केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो (सीबीआई) को सौंपा गया । केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने अन्वेषण के पश्चात् अभियुक्तों (इस अपील में प्रत्यर्थियों) के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन आरोप पत्र प्रस्तुत किया । प्रथम अपर सेशन न्यायाधीश, देहरादून के न्यायालय ने पुलिस रिपोर्ट पर संज्ञान लेने के पश्चात् अनिल कुमार, श्याम बिहारी और अरशद अली (इस अपील में प्रत्यर्थी) को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध करने के लिए आरोपित किया । विचारण के दौरान विचारण न्यायालय ने अभि. सा. 3 और अभि. सा. 6 के परिसाक्ष्य को असंगत पाया और जहां तक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी श्याम सिंह (अभि. सा. 15) का संबंध है, विचारण न्यायालय ने उसे निम्नलिखित कारणों से अविश्वसनीय पाया – (क) अभि. सा. 15 ने घटना और अपराधियों के बारे में जानकारी होने की बात का तुरंत न तो पुलिस को और न ही ग्रामवासियों को प्रकटीकरण किया था, बल्कि कई दिन बीत जाने के पश्चात् एक शपथपत्र बनाया और इसे डाक द्वारा पुलिस के उच्च प्राधिकारियों को प्रेषित किया ; (ख) अभि. सा. 15 के शपथपत्र सहित वैसी ही भाषा में वैसा ही प्रकटीकरण करते हुए उसी दिन कमोवेश उसी समय बनाए गए और उसी वकील द्वारा तैयार किए गए तीन शपथपत्र कुछ दिनों के पश्चात् पुलिस को प्राप्त हुए थे ; और (ग) अभि. सा. 15 ने यह झूठ बोला कि वह उस

समय अकेला था जब वह शपथपत्र बनवाने के लिए गया था । अभि. सा. 15 के प्रत्यक्षदर्शी वृतांत को त्यक्त करने के पश्चात् और अभि. सा. 3 और अभि. सा. 6 के प्रत्यक्षदर्शी वृतांतों को अभियुक्तों को आलिप्त करने के लिए असंगत पाते हुए विचारण न्यायालय ने अन्य परिस्थितियों पर विचार करने के पश्चात् और संपूर्ण साक्ष्य का विस्तार से विश्लेषण करने के पश्चात् निष्कर्ष निकाला कि अभियोजन पक्ष यह साबित करने में असफल रहा है कि वर्दीधारी तीनों पुलिस कर्मी, जिन्होंने राज कुमार बालियान (मृतक) पर आक्रमण किया था, वही हैं जो विचारण का सामना कर रहे हैं और उन्हें दोषमुक्त कर दिया । विचारण में असफल रहने पर राज्य ने एक समय-वर्जित अपील विलंब की माफी के लिए आवेदन और अपील की इजाजत की ईप्सा करते हुए आवेदन के साथ फाइल की । उच्च न्यायालय द्वारा विलंब की माफी के लिए आवेदन को मंजूर किया गया किंतु अपील की इजाजत की ईप्सा करते हुए आवेदन को नामंजूर कर दिया और तद्नुसार अपील खारिज कर दी । उच्च न्यायालय ने अपील की इजाजत की ईप्सा करते हुए आवेदन को नामंजूर करते हुए पाया कि अभियोजन का पक्षकथन तीन प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के वृतांतों पर आधारित है । प्रत्यक्षदर्शी साक्षी अभि. सा. 3 और अभि. सा. 6 पुलिस कर्मियों की शनाख्त नहीं कर सके थे और जहां तक अभि. सा. 15 का संबंध है, उसे विश्वसनीय नहीं पाया गया । इसके अलावा, चिकित्सीय साक्ष्य से उपदर्शित होता था कि मृतक की मृत्यु एक .12 बोर के आयुध से चलाई गई गोलियों से पहुंचीं क्षतियों के कारण हुई थी न कि राइफल, जो अभियुक्तों के पास थीं, से चलाई गई गोलियों से हुई थी इसलिए अपील को औपचारिक रूप से सुनने के लिए अपील के लिए इजाजत प्रदान करना एक व्यर्थ की कवायद होगी । केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील को खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अभियोजन का पक्षकथन प्रत्यक्षदर्शी वृतांत तथा कतिपय परिस्थितियों पर आधारित है । प्रत्यक्षदर्शी वृतांत अभि. सा. 3, अभि. सा. 6 और अभि. सा. 15 द्वारा दिया गया है । अभि. सा. 3

और अभि. सा. 6 मृतक के साथ, यद्यपि एक अलग स्कूटर पर, यात्रा कर रहे थे । इसलिए उनके पास घटना को देखने का अवसर था । उनके अनुसार, जब वे अपने-अपने स्कूटरों पर यात्रा कर रहे थे, तब पुलिस की वर्दी में व्यक्तियों द्वारा उन पर टॉर्च की रोशनी डाली गई । परिणामस्वरूप, मृतक का स्कूटर लड़खड़ा गया । उसके पश्चात्, जब बंदूक से गोलियां चलाई गईं तो वे बचकर गांव में आ गए । जानकारी मिलने पर, गांव से बड़ी संख्या में व्यक्ति घटनास्थल पर पहुंचे । महत्वपूर्ण बात यह है कि न तो अभि. सा. 3 और न ही अभि. सा. 6 तीनों अभियुक्तों में से किसी कि शनाख्त कर सके । उन्होंने यह अभिसाक्ष्य नहीं दिया है कि अपराध में अंतर्ग्रस्त तीनों पुलिसकर्मी वे ही हैं जो विचारण का सामना कर रहे हैं । इस प्रकार, विचारण न्यायालय द्वारा अपनाए गए इस दृष्टिकोण में अनुचितता की बात तो दूर, कोई कमी नहीं है कि अभि. सा. 3 और अभि. सा. 6 का साक्ष्य विचारण का सामना कर रहे तीनों अभियुक्तों के संबंध में अभियोजन पक्ष के लिए ज्यादा सहायक नहीं है । अभि. सा. 15 के परिसाक्ष्य के संबंध में विचारण न्यायालय द्वारा उसे अविश्वसनीय और अविश्वासप्रद ठहराने के लिए विस्तृत कारण अभिलिखित किए गए हैं । इसके अलावा, अभि. सा. 15 के मौजूद होने की बात की पुष्टि अभि. सा. 3 और अभि. सा. 6 द्वारा नहीं की गई है । अन्यथा भी, एक सप्ताह से अधिक चुप्पी साधे रखने के लिए अभि. सा. 15 के आचरण से हमारे मस्तिष्क में इस बारे में संदेह पैदा होता है कि कहीं वह परामर्श के आधार पर खड़ा किया गया साक्षी तो नहीं है, विशिष्ट रूप से, जब हम यह पाते हैं कि उसके द्वारा प्रथम कथन अन्वेषण अभिकरण को नहीं किया गया था अपितु एक वकील द्वारा तैयार किए गए शपथपत्र पर किया गया था, जिसने साथ ही साथ समरूप शब्दों में तीन शपथपत्र तैयार किए थे । विचारण न्यायालय ने इन सभी तथ्यों के साथ-साथ यह भी अवेक्षा की कि अभि. सा. 15 ने जब यह कथन किया कि वह शपथपत्र तैयार कराने के लिए अकेला गया था तो वह झूठ बोल रहा था । विचारण न्यायालय ने यह भी पाया कि सभी तीनों शपथपत्र एक ही विक्रेता से लाए गए क्रमवर्ती रूप से संख्यांकित स्टांप पेपर पर तैयार किए गए थे और शपथपत्र आनन-फानन में तैयार किए गए थे,

जिससे निश्चित रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि वे किसी अधिवक्ता द्वारा तैयार किए गए थे । विचारण न्यायालय ने यह भी पाया कि अभि. सा. 15 का आचरण इस बात को लेकर थोड़ा अप्रायिक था कि उसने अभी मृतक के पिता सहित किसी को भी प्रकटीकरण नहीं किया था और वह सीधे शपथपत्र तैयार कराने के लिए चला गया और पुलिस के उच्च अधिकारी को डाक द्वारा एक शपथपत्र प्रेषित कर दिया । हालांकि उस समय तक अन्वेषण स्थानीय पुलिस से सीबी-सीआईडी को आंतरित कर दिया गया था और इसलिए स्थानीय पुलिस से कोई डर नहीं था । इन परिस्थितियों में, यदि विचारण न्यायालय ने अभि. सा. 15 के अभिसाक्ष्य को त्यक्त किया था तो, इस न्यायालय की राय में, ऐसा करना न्यायोचित था । (पैरा 28 और 29)

साबित परिस्थितियों का उल्लेख करते हैं । यह प्रकट होता है कि साक्षी इस बात पर अविचल हैं कि उस दुर्भाग्यपूर्ण रात्रि को एक पुलिस कार्रवाई हुई थी । मान लेते हैं यह बात सत्य है कि रात्रि में वर्दीधारी व्यक्तियों और जनता के सदस्यों के बीच गोली-बारी का आदान-प्रदान हुआ था, किंतु ऐसा कोई विश्वसनीय साक्ष्य नहीं है कि गोली का आदान-प्रदान हत्या करने की दृष्टि से किया गया था । इसके अलावा, मृतक की मृत्यु राइफल की गोली से पहुंची क्षति से नहीं हुई थी बल्कि उसकी मृत्यु .12 बोर की बंदूक की गोली से हुई थी जिसे अभियुक्तों को जारी की गई सर्विस राइफलों से हुई नहीं माना जा सकता । अत: भले ही घटनास्थल पर अभियुक्तों को जारी की गई सर्विस राइफलों से संबधित माने जा सकने वाले खाली कारतूस पाए गए थे, तो भी मृतक की मृत्यु कारित करने में अभियुक्तों की आपराधिकता का निष्कर्ष नहीं निकलता है । इसके अतिरिक्त, विचारण का सामना कर रहे अभियुक्तों में से किसी से .12 बोर की बंदूक की कोई बरामदगी नहीं हुई है । महत्वपूर्ण बात यह है कि घटना के पश्चात् ग्रामवासी घटनास्थल पर एकत्रित हो गए थे । पुलिस घटनास्थल पर पहुंची थी और क्षतिग्रस्त को अस्पताल लेकर गई थी । अभियोजन पक्ष के साक्ष्य के अनुसार, अभियुक्त इस अवधि के दौरान घटनास्थल पर मौजूद थे । अत: यदि वे वास्तव में अंतर्ग्रस्त थे तो उनकी या तो अभि. सा. 3 या अभि. सा. 6 द्वारा

शनाख्त की जा सकती थी किंतु यहां ऐसी कोई स्थिति नहीं है । इसके अतिरिक्त, अभियुक्तों की घटनास्थल पर लगातार मौजूदगी एक ऐसी परिस्थिति है जो एक ऐसे आचरण के रूप में अभियुक्तों के पक्ष में जाती है जो आपराधिक मन:स्थिति होने की बात को झुठलाती है । एक अन्य परिस्थिति जो अभियुक्तों के पक्ष में जाती है, यह है कि अभियोजन के स्वयं अपने पक्षकथन के अनुसार तीनों अभियुक्तों में से प्रत्येक के पास 50-50 राउंड कारतूसों के साथ राइफलें थी । स्वीकृत रूप से, घटनास्थल पर पाए गए कुछ खाली कारतूस अभियुक्तों को जारी की गई राइफल से नहीं दागे गए थे । यह बात कुछ अन्य राइफल भी मौजूद होने की सूचक है । यह राइफल किसकी थी, इस बारे में अभियोजन पक्ष का साक्ष्य मौन है । इसके अलावा, यदि अभियुक्तों को गोली चलाने के लिए अपनी राइफल का प्रयोग करना होता तो वे क्यों मृतक को क्षति पहुंचाने के लिए देसी पिस्तौल का प्रयोग करते । यह परिस्थिति कि अभियुक्तों को उस क्षेत्र की गश्त करनी थी और उस दुर्भाग्यपूर्ण रात्रि को उस उद्देश्य के लिए पुलिस थाने से गए थे, एक ऐसी परिस्थिति है जो अभियुक्तों पर दोष मढ़ने के लिए निश्चायक नहीं है । क्योंकि गश्त के क्षेत्र के अंतर्गत दो गांव आते थे । यह संभव हो सकता है कि अभियुक्त घटनास्थल पर बाद में तब पहुंचे हों जब घटना पहले ही घट चुकी हो और अपराधियों का पीछा करने के लिए अपनी सर्विस राइफलों से गोलियां दागी हों । चाहे जो भी स्थिति हो, जब एक बार परिस्थितियों के आधार पर दोषसिद्धि निश्चित करने के लिए अभि. सा. 15 के प्रत्यक्षदर्शी वृत्तांत को त्यक्त कर दिया गया है, तो परिस्थितियों की इतनी पूर्ण श्रृंखला बननी चाहिए थी जिससे उपदर्शित होता हो कि सभी मानवीय अधिसंभाव्यता में विचारण का सामना कर रहे व्यक्ति ही न कि कोई और वह व्यक्ति थे जिन्होंने अपराध किया था । इस मामले में साबित पाई गई परिस्थितियों से इतनी पूर्ण श्रृंखला का गठन नहीं होता जिससे उपदर्शित होता हो कि सभी मानवीय अधिसंभाव्यता में वह अभियुक्त ही थे न कि और कोई जिन्होंने अपराध किया था । ऐसी स्थिति में, विचारण न्यायालय के पास अभियुक्तों को संदेह का फायदा देने के सिवाय कोई विकल्प नहीं था । ऊपर यथा

उल्लिखित सभी कारणों से, यह न्यायालय इसे उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए और केवल निर्णय को पुन: लिखने के लिए उच्च न्यायालय को विप्रेषित करने हेतु एक उपयुक्त मामला नहीं पाता है क्योंकि ऐसा करना, इस न्यायालय के मत में, एक व्यर्थ की कवायद होगी । (पैरा 30, 31, 32 और 34)

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2013 की दांडिक अपील सं. 413.

2012 की सरकारी अपील सं. 4 में उत्तराखंड उच्च न्यायालय, नैनीताल द्वारा तारीख 26 जुलाई, 2012 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री विक्रमजीत बनर्जी, अपर महा सालिसिटर, संजय कुमार त्यागी, रंजन कुमार चौरसिया, शुभेन्दु आनंद, तथागत शर्मा, नरिंग चामविबो जेलियांग और अरविन्द कुमार शर्मा

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री अनिल के. शर्मा, संजीव कुमार और प्रवीण चतुर्वेदी

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति मनोज मिश्रा ने दिया ।

न्या. मिश्रा – इस अपील में 2022 की सरकारी अपील सं. 4 में उत्तराखंड उच्च न्यायालय, नैनीताल (संक्षेप में "उच्च न्यायालय" के तारीख 26 जुलाई, 2012 के निर्णय और आदेश को चुनौती दी गई है । उक्त आदेश द्वारा यद्यपि मामला सं. आरसी-5/87-एसआईयू.II में तृतीय अपर जिला और सेशन न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम), केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो, देहरादून (संक्षेप में "विचारण न्यायालय") द्वारा तारीख 13 दिसंबर, 2011 को पारित दोषमुक्ति के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील फाइल करने में विलंब को माफ किया गया था, किंतु दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में "संहिता") की धारा 378(3) के अधीन अपील के लिए इजाजत की ईप्सा करते हुए आवेदन को नामंजूर कर दिया गया और परिणामत सरकारी अपील खारिज कर दी गई ।

आरंभिक तथ्य

2. तारीख 24 जून, 1987 की रात्रि/देर रात्रि में राज कुमार बालियान (संक्षेप में "मृतक") की हत्या कर दी गई थी । प्रमोद कुमार त्यागी (अभि. सा. 6) द्वारा, अन्य बातों के साथ-साथ, यह अभिकथन करते हुए एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई कि जब वह और सुदीप (अभि. सा. 3) एक स्कूटर पर और राज कुमार बालियान (मृतक) एक अन्य स्कूटर पर एक विवाह में सम्मिलित होने के लिए मुजफ्फरनगर से मीरापुर जा रहे थे, तो भटोडा मोड़ के निकट लगभग 9.30 बजे अपराह्न में स्कूटर की रोशनी में उन्होंने सड़क पर तीन पुलिस कर्मियों को खड़े देखा । उनमें से एक के पास डंडा (छड़ी) था जबकि अन्य दो राइफलें लिए हुए थे । जिस व्यक्ति के पास डंडा था उसने उन पर टार्च से रोशनी डाली । परिणामस्वरूप, उनका अपने-अपने स्कूटरों से नियंत्रण खो गया और लड़खड़ाकर गिर गए । पुलिस कर्मियों में से एक ने गोली चलाकर मार देने का आह्वान किया । परिणामत:, चलाई गई गोलियां मृतक को लगी, जो घटनास्थल पर गिर गया । तथापि, अभि. सा. 3 और अभि. सा. 6 बचकर गांव जाने में सफल रहे । जानकारी मिलने पर, ग्रामवासी घटनास्थल पर पहुंचे और पुलिस भी पहुंची। पुलिस की मौजूदगी में मृतक को अस्पताल ले जाया गया किंतु क्षतियों के कारण उसकी रास्ते में ही मृत्यु हो गई । उसके पश्चात्, शव को अस्पताल ले जाया गया और शव को वहां छोड़ने के पश्चात् अभि. सा. 6 ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई जिसे पुलिस थाना सिखेरा में अपराध मामला सं. 48/87 के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया ।

3. घटना का एक अन्य वृत्तांत तारीख 25 जून, 1987 को महेन्द्र सिंह की प्रेरणा पर दर्ज किया गया जिससे अपराध मामला सं. 48ए/87 उत्पन्न हुआ । उसमें, अन्य बातों के साथ-साथ यह अभिकथन किया गया था कि तारीख 26 मई, 1987 को गांव में एक लूट की घटना घटी थी जिसमें एक व्यक्ति की मृत्यु हो गई थी । चूंकि अपराधी नियमित रूप से गांव में आ रहे थे इसलिए तब से ग्रामवासियों के साथ-साथ पुलिस द्वारा लगातार निगरानी की जा रही थी, जो क्षेत्र में गश्त कर रहे थे । उसमें यह अभिकथन किया गया कि जब तीन पुलिस कांस्टेबल

गांव में गश्त कर रहे थे और गांव के लोग तारीख 24 जून, 1987 को रात्रि में निगरानी कर रहे थे तब लगभग 9.00 बजे अपराह्न में एक व्यक्ति आया और शोर मचाया कि 5-6 अपराधी मोटरसाइकिलों और स्कूटरों पर गांव में आने वाले हैं । यह सूचना प्राप्त होने पर ग्रामवासी और पुलिस वाले चौकन्ना हो गए । लगभग 9.30 बजे अपराह्न में एक मोटरसाइकिल आई और भटोडा मोड़ से थोड़ा आगे आकर रुकी । उसके पश्चात् तेज गति से दो स्कूटर आए । जब टॉर्च की रोशनी डाली गई और स्कूटरों को रुकने का संकेत किया गया, तो स्कूटर पर सवार व्यक्तियों ने ग्रामवासियों और पुलिस वालों को मारने की दृष्टि से गोली चलाई । तथापि, एक स्कूटर लड़खड़ा गया और दूसरा रुक गया । तथापि, अपराधी गोली चलाते हुए भागने लगे । परिणामस्वरूप, पुलिस और ग्रामवासियों द्वारा जवाब में गोली चलाई गई । अपराधियों में से एक का पीछा किया गया और ग्रामवासियों द्वारा धर-दबोचा गया । उनके द्वारा उसकी पिटाई भी की गई । उस समय पर, पुलिस थाना सिखेरा से एक अम्बेसडर कार में एक निरीक्षक पहुंचा । उसने अपराधी से परिप्रश्न किए । बाद में, कई सारे ग्रामवासी पहुंचे और सूचित किया कि पकड़ा गया व्यक्ति राज कुमार, अधिवक्ता है । उसके पश्चात्, राज कुमार को अस्पताल ले जाया गया । उसी समय पर, घटनास्थल की तलाशी ली गई और कारतूसों के दो खाली खोल बरामद किए गए ।

4. पूर्वोक्त दोनों मामलों का अन्वेषण सीबी-सीआईडी को सौंपा गया और बाद में आगे अन्वेषण के लिए केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो (सीबीआई) को सौंपा गया जिस पर केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने मामला सं. आरसी-5/87-एसआईयू. II रजिस्ट्रीकृत किया । केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने अन्वेषण के पश्चात् अभियुक्तों (इस अपील में प्रत्यर्थियों) के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में "भारतीय दंड संहिता") की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन आरोप पत्र प्रस्तुत किया । प्रथम अपर सेशन न्यायाधीश, देहरादून के न्यायालय ने पुलिस रिपोर्ट पर संज्ञान लेने के पश्चात् अनिल कुमार, श्याम बिहारी और अरशद अली (इस अपील में प्रत्यर्थी) को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध करने के लिए आरोपित किया । अभियुक्तों ने

दोषी न होने का अभिवाक् किया और विचारण किए जाने का दावा किया ।

5. विचारण के दौरान अभियोजन पक्ष ने 33 साक्षियों की परीक्षा की और रोजनामचा प्रविष्टियों, अभिग्रहण ज्ञापनों, स्थल नक्शा, न्यायालयिक प्रयोगशाला की रिपोर्टों, शव-परीक्षा रिपोर्ट आदि से संबंधित विभिन्न दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किए । विचारण के दौरान विभिन्न तात्विक प्रदर्श, जैसे कि अन्वेषण के दौरान अभिगृहीत की गई वस्तुएं, प्रस्तुत किए गए और उनका प्रदर्श बनाया गया ।

6. अभियोजन साक्ष्य समाप्त होने के पश्चात् संहिता की धारा 313 के अधीन अभियुक्तों के कथन अभिलिखित करने के लिए उनके समक्ष अभियोजन साक्ष्य में प्रकट अपराध में आलिप्त करने वाली परिस्थितियों को रखा गया । संहिता की धारा 313 के अधीन अपने कथन में अभियुक्तों ने उनके विरुद्ध प्रकट अपराध में आलिप्त करने वाली परिस्थितियों से इनकार किया और दावा किया कि उन्हें मिथ्या रूप से फंसाया गया है और बलि का बकरा बनाया गया है ।

अभियोजन साक्ष्य की प्रकृति

7. अभियोजन पक्ष ने पूर्वोक्त तीनों अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप को निम्नलिखित साक्ष्य प्रस्तुत करके सिद्ध करना चाहा :–

(i) घटना की तारीख, समय और स्थान पर तीनों अभियुक्त, जैसा कि संबंधित पुलिस थाने में की गई रोजनामचा प्रविष्टियों से प्रतिबिम्बित होता है, पहरा ड्यूटी पर थे ;

(ii) रोजनामचा प्रविष्टियों से प्रतिबिम्बित होता है कि वे पुलिस थाने से एक-एक राइफल और 50-50 कारतूसों के साथ रवाना हुए थे ;

(iii) प्राक्षेपिकी विज्ञानी की रिपोर्ट से पुष्टि होती है कि घटनास्थल से बरामद राइफल के कुछ खाली कारतूस अभियुक्तों की सर्विस राइफलों से दागे गए थे जिससे घटनास्थल पर उनकी मौजूदगी की पुष्टि होती है ;

(iv) अभि. सा. 3 और अभि. सा. 6 ने वर्णित किया है कि गोलियां उन पुलिस कर्मियों द्वारा चलाई गईं थी जिन्होंने स्कूटर पर सवार व्यक्तियों पर टॉर्च की रोशनी डाली थी ;

(v) अभि. सा. 15 (श्याम सिंह) ने अपराध में तीनों अभियुक्तों की भागीदारी होने की पुष्टि की है और साबित किया है कि अन्य दो अभियुक्तों के आह्वान पर अनिल कुमार ने एक देसी पिस्तौल निकाली और मृतक पर गोली चलाई थी ;

(vi) ग्रामवासियों ने, जो घटना के पश्चात् घटनास्थल पर पहुंचे थे, पाया था कि तीनों अभियुक्त अन्य व्यक्तियों के साथ घटनास्थल पर मौजूद थे ;

(vii) पुलिस ने घटना का एक मिथ्या प्रति-वृत्तांत अर्थात् अपराध मामला सं. 48ए/87 तैयार किया जिससे उपदर्शित होता है कि पुलिस की ओर से विधि के शिकंजे से स्वयं को बचाने के लिए एक जानबूझकर प्रयास किया गया था ।

विचारण न्यायालय के निष्कर्ष

8. विचारण न्यायालय ने अभि. सा. 3 और अभि. सा. 6 के परिसाक्ष्य को असंगत पाया क्योंकि दोनों साक्षियों ने यह नहीं कहा था कि अपराध में अंतर्वलित पुलिस कर्मी वही हैं जो विचारण का सामना कर रहे हैं । बल्कि, उन्होंने स्वीकार किया कि उन्होंने पहले अभियुक्तों को नहीं देखा था और अभियुक्तों को शनाख्त के लिए प्रस्तुत नहीं किया गया था ।

9. जहां तक प्रत्यक्षदर्शी श्याम सिंह (अभि. सा. 15) का संबंध है, विचारण न्यायालय ने उसे निम्नलिखित कारणों से अविश्वसनीय पाया – (क) अभि. सा. 15 ने घटना और अपराधियों के बारे में जानकारी होने की बात का तुरंत न तो पुलिस को और न ही ग्रामवासियों को प्रकटीकरण किया था, बल्कि कई दिन बीत जाने के पश्चात् एक शपथपत्र बनाया और इसे डाक द्वारा पुलिस के उच्च प्राधिकारियों को प्रेषित किया ; (ख) अभि. सा. 15 के शपथपत्र सहित वैसी ही भाषा में

वैसा ही प्रकटीकरण करते हुए उसी दिन कमोवेश उसी समय बनाए गए और उसी वकील द्वारा तैयार किए गए तीन शपथपत्र कुछ दिनों के पश्चात् पुलिस को प्राप्त हुए थे ; और (ग) अभि. सा. 15 ने यह झूठ बोला कि वह उस समय अकेला था जब वह शपथपत्र बनवाने के लिए गया था ।

10. अभि. सा. 15 के प्रत्यक्षदर्शी वृत्तांत को त्यक्त करने के पश्चात् और अभि. सा. 3 और अभि. सा. 6 के प्रत्यक्षदर्शी वृत्तांतों को अभियुक्तों को आलिप्त करने के लिए असंगत पाते हुए विचारण न्यायालय उन अन्य परिस्थितियों पर विचार करने के लिए अग्रसर हुआ जिन पर अभियोजन पक्ष ने अवलंब लिया था । ये परिस्थितियां थीं – (क) घटनास्थल से उठाए गए कुछ खाली कारतूसों के खोल अभियुक्तों को जारी की गई राइफलों से दागे गए पाए गए थे ; और (ख) 1987 के अपराध मामला सं. 48क द्वारा घटना के बारे में एक मिथ्या वृत्तांत स्थापित करने का प्रयत्न किया गया था ।

11. अभियुक्तों की सर्विस राइफलों के साथ कुछ खाली कारतूसों का मिलान होने के संबंध में विचारण न्यायालय ने पाया कि घटनास्थल से बरामद किए गए चार .303 कारतूसों से में से एक अभियुक्त अनिल की राइफल से, एक अभियुक्त श्याम बिहारी की राइफल से दागा गया था जबकि शेष दो कारतूस तीनों अभियुक्तों में से किसी की सर्विस राइफलों से नहीं दागे गए थे । इस प्रकार, अभियोजन पक्ष के साक्ष्य से यह स्पष्ट नहीं होता है कि शेष दो गोलियां किसकी राइफल से दागी गई थीं । विचारण न्यायालय के अनुसार, यह विसंगति अभियुक्तों के विरुद्ध अभियोजन पक्ष के वृत्तांत को संदेहास्पद बनाती है क्योंकि इसमें कुछ अन्य व्यक्तियों का भी हाथ हो सकता था ।

12. उपरोक्त के अतिरिक्त, विचारण न्यायालय ने शव-परीक्षा रिपोर्ट से यह पाया कि मृतक को पहुंची बंदूक की गोली की क्षति राइफल की गोली से नहीं पहुंची थी अपितु .12 बोर के आयुध से पहुंची थी जो अभियुक्तों में से किसी से बरामद नहीं किया गया था । इसलिए यदि घटनास्थल पर राइफल की जो गोलियां पाई गई थीं, वे गोलियां वह नहीं थीं जिनसे मृतक को क्षतियां पहुंची थी । जहां तक घटना के प्रति-वृत्तांत

(अर्थात् अपराध मामला सं. 48क/87) का संबंध है, अभियुक्तों के विरुद्ध कोई प्रतिकूल निष्कर्ष नहीं निकाला गया था क्योंकि यह उनकी प्रेरणा पर फाइल नहीं किया गया था ।

13. उपरोक्त के अतिरिक्त, विचारण न्यायालय ने पाया कि अभियोजन पक्ष के वृत्तांत के अनुसार कई सारे व्यक्ति (अर्थात् ग्रामवासी जिनमें अभि. सा. 3 और अभि. सा. 6 तथा पुलिस कर्मी भी थे) घटनास्थल पर पहुंचे थे और तीनों अभियुक्त भी वहां मौजूद थे, फिर भी उनकी शनाख्त नहीं की गई थी । इन परिस्थितियों में, यह निष्कर्ष निकाला गया कि यदि अभि. सा. 3 और अभि. सा. 6, जो एक अन्य स्कूटर पर मृतक की बहुत निकटता में यात्रा कर रहे थे, ने अभियुक्तों की उन व्यक्तियों के रूप में पहचान की थी जिन्होंने मृतक की हत्या की थी, तो उन्होंने घटनास्थल पर उनकी शनाख्त की होती और देसी पिस्तौलें भी बरामद की जा सकती थीं ।

14. विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष के संपूर्ण साक्ष्य का विस्तार से विश्लेषण करने के पश्चात् निष्कर्ष निकाला कि अभियोजन पक्ष यह साबित करने में असफल रहा है कि वर्दीधारी तीनों पुलिस कर्मी, जिन्होंने राज कुमार बालियान (मृतक) पर आक्रमण किया था, वही हैं जो विचारण का सामना कर रहे हैं ।

उच्च न्यायालय की मताभिव्यक्तियां

15. विचारण में सफल होने में असफल रहने पर राज्य ने एक समय-वर्जित अपील विलंब की माफी के लिए आवेदन और अपील की इजाजत की ईप्सा करते हुए आवेदन के साथ फाइल की । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश द्वारा विलंब की माफी के लिए आवेदन को मंजूर किया किंतु अपील की इजाजत की ईप्सा करते हुए आवेदन को नामंजूर कर दिया और तद्नुसार अपील खारिज कर दी ।

16. उच्च न्यायालय ने अपील की इजाजत की ईप्सा करते हुए आवेदन को नामंजूर करते हुए पाया कि अभियोजन का पक्षकथन तीन प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के वृत्तांतों पर आधारित है । प्रत्यक्षदर्शी साक्षी अभि.

सा. 3 और अभि. सा. 6 पुलिस कर्मियों की शनाख्त नहीं कर सके थे और जहां तक अभि. सा. 15 का संबंध है, उसे विश्वसनीय नहीं पाया गया । इसके अलावा, चिकित्सीय साक्ष्य से उपदर्शित होता था कि मृतक की मृत्यु एक .12 बोर के आयुध से चलाई गई गोलियों से पहुंचीं क्षतियों के कारण हुई थी न कि राइफल, जो अभियुक्तों के पास थीं, से चलाई गई गोलियों से हुई थी इसलिए अपील को औपचारिक रूप से सुनने के लिए अपील के लिए इजाजत प्रदान करना एक व्यर्थ की कवायद होगी ।

17. हमने अपीलार्थी की ओर से श्री विक्रमजीत बनर्जी, विद्वान् अपर महा सालिसिटर, जिनकी श्री राजन कुमार चौरसिया, विद्वान् अधिवक्ता द्वारा सहायता की गई ; प्रत्यर्थियों की ओर से विद्वान् अधिवक्ता श्री अनिल के. शर्मा को सुना और अभिलेख का परिशीलन किया ।

दलीलें

18. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने दलील दी कि यह ऐसा मामला है जिसमें संदेह के परे यह साबित किया गया है कि मृतक पर उन व्यक्तियों द्वारा गोली चलाई गई थी जो पुलिस की वर्दी पहने हुए थे । अभिलेख पर लाए गए साक्ष्य के अनुसार घटना की रात्रि को तीनों अभियुक्त अर्थात् श्याम बिहारी, अनिल कुमार शर्मा और अरशद अली, सभी सशस्त्र कांस्टेबल, क्षेत्र की गश्त कर रहे थे । घटना के कुछ पश्चात् तीनों कांस्टेबल घटनास्थल पर मौजूद पाए गए थे । इसलिए घटनास्थल पर उनकी मौजूदगी की पुष्टि न केवल प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों द्वारा की गई है अपितु परिस्थितियों से भी होती है जिसमें यह तथ्य भी सम्मलित है कि घटनास्थल से बरामद किए गए कतिपय खाली कारतूस उनकी सर्विस राइफलों से दागे गए थे । इस प्रकार, न केवल उनकी मौजूदगी साबित होती है अपितु पुलिस की कार्रवाई का वर्णन करते हुए घटना के एक अन्य वृत्तांत अर्थात् 1987 के अपराध मामला सं. 48क से यह पुष्टि होती है कि मृत्यु पुलिस कार्रवाई का परिणाम थी । अत: अभियुक्तों पर इस अपराध में आलिप्त करने वाली परिस्थितियों को

स्पष्ट करने का अत्यधिक भार था और उसके अभाव में अभियुक्तों के विरुद्ध एक प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए ।

19. यह भी दलील दी गई कि भले ही अभि. सा. 3 और अभि. सा. 6 अभियुक्तों की शनाख्त नहीं कर सके थे, तो भी उन्होंने उस रीति के संबंध में जिसमें घटना घटी थी, अभियोजन पक्ष के वृत्तांत की संपुष्टि की है और इसलिए उनके परिसाक्ष्य का प्रयोग अभि. सा. 15 के परिसाक्ष्य को संपुष्ट करने के लिए किया जा सकता है, जिसने न केवल घटना का वर्णन किया है अपितु अभियुक्तों की पहचान और शनाख्त कर सका था ।

20. इस प्रकार, अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल के अनुसार विचारण न्यायालय का निर्णय अनुचित था और अपील की इजाजत की ईप्सा करते हुए आवेदन को नामंजूर करने के परिणामस्वरूप न्याय की गंभीर हानि हुई है । इसलिए यह निवेदन किया गया कि अपील मंजूर की जाए और मामले को गुणागुण के आधार पर नए सिरे से विचार करने के लिए उच्च न्यायालय को विप्रेषित किया जाए ।

21. इसके विपरीत, प्रत्यर्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल ने दलील दी कि पहली बात तो यह कि अभि. सा. 3 और अभि. सा. 5, जो मृतक के साथ यात्रा कर रहे थे, अभियुक्तों की उन व्यक्तियों के रूप में शनाख्त नहीं कर सके थे जो मृतक की हत्या करने में अंतर्ग्रस्त थे और दूसरी बात यह है कि अभियुक्त की मृत्यु जिस बंदूक की गोली लगने के घाव के कारण हुई थी, उसे .12 बोर के आयुध से कारित हुआ माना जा सकता है न कि उस राइफल से जो अभियुक्तों के पास थी । इसके अलावा, घटनास्थल से उठाए गए कुछ खाली कारतूसों का तीनों अभियुक्तों की राइफलों से मिलान नहीं हुआ था जिससे यह संभावना है कि कोई और भी वहां राइफल के साथ मौजूद था और इसका प्रयोग किया था । इन परिस्थितियों में, यदि विचारण न्यायालय ने अभियुक्तों को संदेह का फायदा दिया था, तो विचारण न्यायालय के निर्णय और आदेश को अनुचित नहीं ठहराया जा सकता जिससे उसे इस अपील में उलटना आवश्यक हो ।

22. अभि. सा. 15 के परिसाक्ष्य के संबंध में प्रत्यर्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल ने दलील दी कि अभि. सा. 15 को कई कारणों से विश्वसनीय नहीं पाया गया है । पहला, उसने किसी को भी घटना देखे जाने के बारे में प्रकटीकरण नहीं किया था हालांकि बड़ी संख्या में ग्रामवासी घटनास्थाल पर पहुंचे थे जिससे उस व्यक्ति के विरुद्ध उसकी हैसियत को ध्यान में रखे बिना प्रकटीकरण करने वाले व्यक्ति को साहस जुटा सकें । दूसरा, अन्वेषण अभिकरण को अपना कथन करने के बजाय इस साक्षी ने एक वकील से एक शपथपत्र तैयार कराया, जिसने एक नहीं अपितु एक जैसे शब्दों में तीन शपथपत्र तैयार किए थे । एक अभि. सा. 15 का था और अन्य दो उन दो व्यक्तियों के थे जो विचारण के दौरान साक्षियों के रूप में उपसंजात नहीं हो सके थे । इससे यह उपदर्शित होता है कि वे शपथपत्र विधिक परामर्श के आधार पर तैयार किए गए थे । तीसरा, अभि. सा. 15 का यह वृत्तांत कि अनिल कुमार ने मृतक को गोली मारने के लिए एक देसी पिस्तौल निकाली थी, दो कारणों से अनधिसंभाव्य प्रतीत होता है अर्थात् ऐसा कृत्य करने के लिए कोई साबित किया गया हेतु नहीं है और जब एक बार उन्होंने पहले ही अपनी राइफलों से गोली चलाई थी, तो वे उन्हीं राइफलों का घटना को एक मुठभेड़ का रंग देकर मृतक की हत्या करने के लिए आसानी से प्रयोग कर सकते थे ।

23. घटनास्थल पर अभियुक्तों की मौजूदगी, पुलिस कर्मियों द्वारा गोलियां चलाने के लिए सर्विस राइफल का प्रयोग और मृतक की हत्या करने जैसी अपराध में आलिप्त करने वाली परिस्थितियों के संबंध में यह दलील दी गई कि वे स्वयमेव इतनी पूर्ण श्रृंखला का गठन करने के लिए अपर्याप्त हैं जिससे यह उपदर्शित होता हो कि सभी मानवीय संभाव्यता में वे अभियुक्त ही थे न कि कोई और जिन्होंने अपराध किया था, बल्कि घटनास्थल पर कुछ ऐसे खाली कारतूसों की मौजूदगी जो तीनों अभियुक्तों को जारी की गई राइफलों से नहीं दागे गए थे, वहां किसी अन्य व्यक्ति की भी मौजूदगी और अभियोजन पक्ष द्वारा उपवर्णित रीति की बजाय किसी अन्य रीति में घटना घटित होने की संभाव्यता उपदर्शित होती है ।

24. उपरोक्त सभी बिंदुओं को उजागर करते हुए प्रत्यर्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल ने दलील दी कि यह ऐसा मामला नहीं है जहां उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश में हस्तक्षेप किया जाए ।

विश्लेषण

25. हमने परस्पर-विरोधी दलीलों पर विचार किया और अभिलेख का परिशीलन किया ।

26. आरंभ में, हम यह मत व्यक्त कर सकते हैं कि निस्संदेह उच्च न्यायालय का निर्णय और आदेश कुछ अस्पष्ट प्रतीत होता है किंतु स्वयं इस आधार पर हमारे द्वारा इस आदेश को अपास्त करने और मामले को उच्च न्यायालय को विप्रेषित करने की आवश्यकता नहीं है, विशिष्ट रूप से, जब अभियोजन के पक्षकथन के गुणागुण का निर्धारण करने के लिए हमारे पास सुसंगत अभिलेख है । इसके अतिरिक्त, क्योंकि घटना वर्ष 1987 की है और अपील एक दशक से अधिक तक लंबित रही है । इन परिस्थितियों में, यदि हम मामले को केवल निर्णय को पुन: लिखने के लिए उच्च न्यायालय को विप्रेषित करते हैं, तो यह न्याय का उपहास होगा । परिणामत:, चूंकि विचारण न्यायालय ने मामले पर अति विस्तार से विचार किया है और उस प्रत्येक साक्ष्य की चर्चा की है जिस पर अभियोजन पक्ष ने अवलंब लेने की ईप्सा की थी, इसलिए हमारे लिए यह निर्धारण करना उपयुक्त होगा कि क्या विचारण न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील के लिए इजाजत न देने से न्याय की हानि हुई है ।

27. यह अति सामान्य विधि है कि दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में अपील न्यायालय की साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने और स्वयं अपना निष्कर्ष निकालने की शक्ति किसी परिसीमा द्वारा सीमित नहीं है । किंतु यह भी समान रूप से स्थिर है कि अपील न्यायालय को दोषमुक्ति के आदेश में केवल इस कारण हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए कि एक प्रतिकूल मत अनुज्ञेय है, विशिष्ट रूप से जहां विचारण न्यायालय द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण साक्ष्य के उचित मूल्यांकन के आधार पर एक

युक्तियुक्त दृष्टिकोण है और अभिलेख पर के सुसंगत साक्ष्य की उपेक्षा/गलत पठन द्वारा दूषित नहीं है ।

28. वर्तमान मामले में, अभियोजन का पक्षकथन प्रत्यक्षदर्शी वृत्तांत तथा कतिपय परिस्थितियों पर आधारित है । प्रत्यक्षदर्शी वृत्तांत अभि. सा. 3, अभि. सा. 6 और अभि. सा. 15 द्वारा दिया गया है । अभि. सा. 3 और अभि. सा. 6 मृतक के साथ, यद्यपि एक अलग स्कूटर पर, यात्रा कर रहे थे । इसलिए उनके पास घटना को देखने का अवसर था । उनके अनुसार, जब वे अपने-अपने स्कूटरों पर यात्रा कर रहे थे, तब पुलिस की वर्दी में व्यक्तियों द्वारा उन पर टॉर्च की रोशनी डाली गई । परिणामस्वरूप, मृतक का स्कूटर लड़खड़ा गया । उसके पश्चात्, जब बंदूक से गोलियां चलाई गईं तो वे बचकर गांव में आ गए । जानकारी मिलने पर, गांव से बड़ी संख्या में व्यक्ति घटनास्थल पर पहुंचे । महत्वपूर्ण बात यह है कि न तो अभि. सा. 3 और न ही अभि. सा. 6 तीनों अभियुक्तों में से किसी की शनाख्त कर सके । उन्होंने यह अभिसाक्ष्य नहीं दिया है कि अपराध में अंतर्ग्रस्त तीनों पुलिसकर्मी वे ही हैं जो विचारण का सामना कर रहे हैं । इस प्रकार, विचारण न्यायालय द्वारा अपनाए गए इस दृष्टिकोण में अनुचितता की बात तो दूर, कोई कमी नहीं है कि अभि. सा. 3 और अभि. सा. 6 का साक्ष्य विचारण का सामना कर रहे तीनों अभियुक्तों के संबंध में अभियोजन पक्ष के लिए ज्यादा सहायक नहीं है ।

29. अभि. सा. 15 के परिसाक्ष्य के संबंध में विचारण न्यायालय द्वारा उसे अविश्वसनीय और अविश्वासप्रद ठहराने के लिए विस्तृत कारण अभिलिखित किए गए हैं । इसके अलावा, अभि. सा. 15 के मौजूद होने की बात की पुष्टि अभि. सा. 3 और अभि. सा. 6 द्वारा नहीं की गई है । अन्यथा भी, एक सप्ताह से अधिक चुप्पी साधे रखने के लिए अभि. सा. 15 के आचरण से हमारे मस्तिष्क में इस बारे में संदेह पैदा होता है कि कहीं वह परामर्श के आधार पर खड़ा किया गया साक्षी तो नहीं है, विशिष्ट रूप से, जब हम यह पाते हैं कि उसके द्वारा प्रथम कथन अन्वेषण अभिकरण को नहीं किया गया था अपितु एक

वकील द्वारा तैयार किए गए शपथपत्र पर किया गया था, जिसने साथ ही साथ समरूप शब्दों में तीन शपथपत्र तैयार किए थे । विचारण न्यायालय ने इन सभी तथ्यों के साथ-साथ यह भी अवेक्षा की कि अभि. सा. 15 ने जब यह कथन किया कि वह शपथपत्र तैयार कराने के लिए अकेला गया था तो वह झूठ बोल रहा था । विचारण न्यायालय ने यह भी पाया कि सभी तीनों शपथपत्र एक ही विक्रेता से लाए गए क्रमवर्ती रूप से संख्यांकित स्टांप पेपर पर तैयार किए गए थे और शपथपत्र आनन-फानन में तैयार किए गए थे, जिससे निश्चित रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि वे किसी अधिवक्ता द्वारा तैयार किए गए थे । विचारण न्यायालय ने यह भी पाया कि अभि. सा. 15 का आचरण इस बात को लेकर थोड़ा अप्रायिक था कि उसने अभी मृतक के पिता सहित किसी को भी प्रकटीकरण नहीं किया था और वह सीधे शपथपत्र तैयार कराने के लिए चला गया और पुलिस के उच्च अधिकारी को डाक द्वारा एक शपथपत्र प्रेषित कर दिया । हालांकि उस समय तक अन्वेषण स्थानीय पुलिस से सीबी-सीआईडी को आंतरित कर दिया गया था और इसलिए स्थानीय पुलिस से कोई डर नहीं था । इन परिस्थितियों में, यदि विचारण न्यायालय ने अभि. सा. 15 के अभिसाक्ष्य को त्यक्त किया था तो, हमारी राय में, ऐसा करना न्यायोचित था ।

30. साबित परिस्थितियों का उल्लेख करते हैं । यह प्रकट होता है कि साक्षी इस बात पर अविचल हैं कि उस दुर्भाग्यपूर्ण रात्रि को एक पुलिस कार्रवाई हुई थी । मान लेते हैं यह बात सत्य है कि रात्रि में वर्दीधारी व्यक्तियों और जनता के सदस्यों के बीच गोली-बारी का आदान-प्रदान हुआ था, किंतु ऐसा कोई विश्वसनीय साक्ष्य नहीं है कि गोली का आदान-प्रदान हत्या करने की दृष्टि से किया गया था । इसके अलावा, मृतक की मृत्यु राइफल की गोली से पहुंची क्षति से नहीं हुई थी बल्कि उसकी मृत्यु .12 बोर की बंदूक की गोली से हुई थी जिसे अभियुक्तों को जारी की गई सर्विस राइफलों से हुई नहीं माना जा सकता । अत: भले ही घटनास्थल पर अभियुक्तों को जारी की गई सर्विस राइफलों से संबंधित माने जा सकने वाले खाली कारतूस पाए गए थे, तो भी

मृतक की मृत्यु कारित करने में अभियुक्तों की आपराधिकता का निष्कर्ष नहीं निकलता है । इसके अतिरिक्त, विचारण का सामना कर रहे अभियुक्तों में से किसी से .12 बोर की बंदूक की कोई बरामदगी नहीं हुई है । महत्वपूर्ण बात यह है कि घटना के पश्चात् ग्रामवासी घटनास्थल पर एकत्रित हो गए थे । पुलिस घटनास्थल पर पहुंची थी और क्षतिग्रस्त को अस्पताल लेकर गई थी । अभियोजन पक्ष के साक्ष्य के अनुसार, अभियुक्त इस अवधि के दौरान घटनास्थल पर मौजूद थे । अतः यदि वे वास्तव में अंतर्ग्रस्त थे तो उनकी या तो अभि. सा. 3 या अभि. सा. 6 द्वारा शनाख्त की जा सकती थी किंतु यहां ऐसी कोई स्थिति नहीं है । इसके अतिरिक्त, अभियुक्तों की घटनास्थल पर लगातार मौजूदगी एक ऐसी परिस्थिति है जो एक ऐसे आचरण के रूप में अभियुक्तों के पक्ष में जाती है जो आपराधिक मनःस्थिति होने की बात को झुठलाती है ।

31. एक अन्य परिस्थिति जो अभियुक्तों के पक्ष में जाती है, यह है कि अभियोजन के स्वयं अपने पक्षकथन के अनुसार तीनों अभियुक्तों में से प्रत्येक के पास 50-50 राउंड कारतूसों के साथ राइफलें थी । स्वीकृत रूप से, घटनास्थल पर पाए गए कुछ खाली कारतूस अभियुक्तों को जारी की गई राइफल से नहीं दागे गए थे । यह बात कुछ अन्य राइफल भी मौजूद होने की सूचक है । यह राइफल किसकी थी, इस बारे में अभियोजन पक्ष का साक्ष्य मौन है । इसके अलावा, यदि अभियुक्तों को गोली चलाने के लिए अपनी राइफल का प्रयोग करना होता तो वे क्यों मृतक को क्षति पहुंचाने के लिए देसी पिस्तौल का प्रयोग करते ।

32. यह परिस्थिति कि अभियुक्तों को उस क्षेत्र की गश्त करनी थी और उस दुर्भाग्यपूर्ण रात्रि को उस उद्देश्य के लिए पुलिस थाने से गए थे, एक ऐसी परिस्थिति है जो अभियुक्तों पर दोष मढ़ने के लिए निश्चायक नहीं है । क्योंकि गश्त के क्षेत्र के अंतर्गत दो गांव आते थे । यह संभव हो सकता है कि अभियुक्त घटनास्थल पर बाद में तब पहुंचे हों जब घटना पहले ही घट चुकी हो और अपराधियों का पीछा करने के लिए अपनी सर्विस राइफलों से गोलियां दागी हों । चाहे जो भी स्थिति

हो, जब एक बार परिस्थितियों के आधार पर दोषसिद्धि निश्चित करने के लिए अभि. सा. 15 के प्रत्यक्षदर्शी वृत्तांत को त्यक्त कर दिया गया है, तो परिस्थितियों की इतनी पूर्ण श्रृंखला बननी चाहिए थी जिससे उपदर्शित होता हो कि सभी मानवीय अधिसंभाव्यता में विचारण का सामना कर रहे व्यक्ति ही न कि कोई और वह व्यक्ति थे जिन्होंने अपराध किया था । इस मामले में साबित पाई गई परिस्थितियों से इतनी पूर्ण श्रृंखला का गठन नहीं होता जिससे उपदर्शित होता हो कि सभी मानवीय अधिसंभाव्यता में वह अभियुक्त ही थे न कि और कोई जिन्होंने अपराध किया था । ऐसी स्थिति में, विचारण न्यायालय के पास अभियुक्तों को संदेह का फायदा देने के सिवाय कोई विकल्प नहीं था ।

33. इस प्रक्रम पर, हम अभिलेख पर यह ला सकते हैं कि विद्वान् अपर महासालिसिटर यह नहीं बता सके कि विचारण न्यायालय ने किसी सुसंगत साक्ष्य की उपेक्षा या उसका गलत पठन किया था ।

34. ऊपर यथा उल्लिखित सभी कारणों से, हम इसे उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए और केवल निर्णय को पुन: लिखने के लिए उच्च न्यायालय को विप्रेषित करने हेतु एक उपयुक्त मामला नहीं पाते हैं क्योंकि ऐसा करना, हमारे मत में, एक व्यर्थ की कवायद होगी । यह अपील खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

जस.

[2023] 4 उम. नि. प. 33

संदीप कुमार

बनाम

हरियाणा राज्य और एक अन्य

[2023 की दांडिक अपील सं. 2195]

28 जुलाई, 2023

न्यायमूर्ति दिनेश महेश्वरी और न्यायमूर्ति सुधांशु धुलिया

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 319 [सपठित दंड संहिता, 1860 की धारा 458, 460, 323, 302, 148 और 149] – अपराध के दोषी प्रतीत होने वाले अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने की शक्ति – कतिपय हमलावरों द्वारा इत्तिलाकर्ता के परिवार पर लाठियों और पिस्तौलों से लैस होकर हमला किया जाना और उसके पिता की हत्या किया जाना – घटना में अंतर्ग्रस्त हमलावरों में से तीन हमलावरों का प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में नाम होने के बावजूद आरोप पत्र में नाम न होना – इत्तिलाकर्ता-प्रत्यक्षदर्शी साक्षी द्वारा विचारण के दौरान अतिरिक्त अभियुक्तों को समन करने के लिए धारा 319 के अधीन आवेदन किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा आवेदन मंजूर किया जाना – समन किए गए अतिरिक्त अभियुक्तों में से एक (प्रत्यर्थी सं. 2) द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा उसे अन्वेषण में निर्दोष पाए जाने और आयुध का प्रयोग न किए जाने तथा घटनास्थल से भाग जाने के आधार पर पुनरीक्षण आवेदन को मंजूर किया जाना और विचारण न्यायालय के आदेश को अपास्त किया जाना – शिकायतकर्ता-प्रत्यक्षदर्शी साक्षी द्वारा उच्चतम न्यायालय में अपील – जहां घटना में सम्मिलित हमलावर विधिविरुद्ध जमाव के सदस्य के रूप में घटनास्थल पर मौजूद पाया गया हो और अपराध कारित होने के पश्चात् घटनास्थल से भाग गया हो, वहां दंड संहिता की धारा 149 के अधीन अपराध को लागू करने के लिए अभियुक्त की विनिर्दिष्ट व्यक्तिगत भूमिका तात्विक नहीं है और

उसका केवल विधिविरुद्ध जमाव का सदस्य होना पर्याप्त है और उच्च न्यायालय द्वारा धारा 319 के अधीन आवेदन पर विचार करने के प्रक्रम पर साक्ष्य के गुणागुण पर विचार नहीं किया जा सकता और इसका मूल्यांकन केवल विचारण के दौरान किया जाएगा, इसलिए उच्च न्यायालय के निर्णय को कायम नहीं रखा जा सकता ।

इस अपील के तथ्य इस प्रकार हैं कि शिकायतकर्ता ने यह अभिकथन करते हुए एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई कि कुल 15 हमलावर उसके परिवार पर हमला करने के लिए अर्द्ध-रात्रि में उनके मकान में घुसे । इन हमलावरों में से जिन सात को नामित किया गया था वे लाठी लिए हुए थे और नामित तीन हमलावर/अभियुक्त अर्थात् रमेश गांधी, कालू जाखड़ और पवन क्रमश: बंदूक और पिस्तौलों से लैस थे । पुलिस ने अन्वेषण के पश्चात् नौ व्यक्तियों के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया किंतु रमेश गांधी, कालू जाखड़ और पवन के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल नहीं किया और उनके नाम आरोप पत्र के स्तंभ 2 में रखे गए थे । विचारण आरंभ होने के पश्चात् और जब शिकायतकर्ता की अभि. सा. 9 के रूप में परीक्षा की जा रही थी, तो उसने अपनी मुख्य परीक्षा में प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के रूप में संपूर्ण घटना का प्रकटन किया, जिसमें उसने असंदिग्ध रूप से इन तीनों हमलावरों अर्थात् रमेश गांधी, कालू जाखड़ और पवन की भूमिकाओं का भी उल्लेख किया जो प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में नामित थे किंतु आरोप पत्र में अभियुक्त नहीं बनाया गया था । शिकायतकर्ता-अपीलार्थी द्वारा उसके तुरंत पश्चात् इन तीनों व्यक्तियों को अभियुक्तों के रूप में समन करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के अधीन एक आवेदन दिया गया जिससे कि वे भी विचारण का सामना कर सकें । इस आवेदन को मंजूर किया गया किंतु पुनरीक्षण में उच्च न्यायालय द्वारा इस आदेश को अपास्त कर दिया गया । शिकायतकर्ता द्वारा व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की गई । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 की व्याप्ति की परीक्षा करने से पूर्व, अभि. सा. 9, शिकायतकर्ता द्वारा अपनी मुख्य परीक्षा में किए गए कथन पर विचार करना सुसंगत होगा क्योंकि वह कथन ही

तीनों व्यक्तियों को बुलाने का आधार है । अभि. सा. 9 ने अपनी मुख्य परीक्षा में कथन किया कि तारीख 7 सितंबर, 2017 को वह रात्रि का भोजन करने के पश्चात् अपने छोटे भाई प्रदीप कुमार और अपने चचेरे भाई बिजेन्द्र सहित अपने मकान के प्रांगण में सो रहा था । उसका पिता हनुमान (मृतक) भी प्रांगण में सो रहा था । मकान का मुख्य दरवाजा बंद था । उसका चाचा सुभाष, जयबीर और राज कुमार भी अपने मकानों में सो रहे थे । लगभग 12.30 बजे अर्थात् अर्द्ध-रात्रि में पंद्रह व्यक्ति अपने हाथों में 'लाठी' और 'डंडे' लेकर जंजीर तोड़कर साथ लगे कमरे से उनके मकान में घुसे । दो व्यक्ति अपने हाथों में पिस्तौल लिए हुए थे जिसे बल्ब की रोशनी में देखा जा सका था । उसने फिर कहा कि रमेश गांधी के पास बंदूक थी, कालू जाखड़ और पवन पिस्तौलों से लैस थे और शेष लाठी और डंडे लिए हुए थे । उन्होंने पहले ललकारा और फिर उन सभी की पिटाई करने लगे और धमकी दी कि आज वे शराब बेचने के लिए उन्हें सबक सिखाकर रहेंगे । जब वे उन तीनों पर प्रहार कर रहे थे तब उसका पिता हनुमान उनके बचाव में आया, जिस पर सुभाष ने अपनी लाठी से प्रहार किया । उसने फिर कहा कि सभी व्यक्ति उसके पिता को क्षतियां पहुंचा रहे थे और जब वे अंततः मकान से गए, तो वे अपने आयुधों से गोली चलाते हुए गए थे ।दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 की उपधारा (1) में किसी ऐसे व्यक्ति को अभियुक्त के रूप में समन करना न्यायालय के स्वविवेक पर छोड़ा गया है, जहां चल रहे विचारण में यदि साक्ष्य से प्रतीत होता है कि ऐसे किसी व्यक्ति ने (जो अभी तक विचारण में अभियुक्त नहीं है) कोई अपराध किया है जिसके लिए ऐसे व्यक्ति का अन्य अभियुक्त के साथ विचारण किया जा सकता है । यह न्यायिक विवेकाधिकार उन परिस्थितियों द्वारा पूरी तरह से सीमित है जिनका धारा 319 की उपधारा (1) में उल्लेख किया गया है । हमने पहले ही अभि. सा. 9 (प्रत्यक्षदर्शी साक्षी) द्वारा अपनी मुख्य परीक्षा में किए गए कथन को निर्दिष्ट किया है । इस न्यायालय के विचार से, यहां न्यायालय के पास इस बात पर विचार करते हुए कि अब उसके समक्ष अभि. सा. 9 के कथन के रूप में साक्ष्य है, अभियुक्तों को समन करने के सिवाय कोई विकल्प नहीं था । समन करने के आदेश के अनुसरण में तीनों अभियुक्तों, जिन्हें समन किया गया था, में से केवल

एक अर्थात् रमेश गांधी, जो प्रत्यर्थी सं. 2 है, ने पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया था जिसे तारीख 2 मार्च, 2022 के आदेश द्वारा मंजूर किया गया था । इस न्यायालय की सुविचारित राय में, उच्च न्यायालय ने मामले का मूल्यांकन दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के सही परिप्रेक्ष्य में नहीं किया था । श्री रमेश गांधी (उन तीन अभियुक्तों में से एक जिन्हें समन किया गया था) के पुनरीक्षण आवेदन को इन कारणों से मंजूर किया गया था कि उसे अन्वेषण के दौरान निर्दोष पाया गया था और उसने कदापि बंदूक का प्रयोग नहीं किया था और वास्तव में घटनास्थल से भाग गया था । ये मताभिव्यक्तियां भी, जो हमने अभी-अभी अभि. सा. 9 की मुख्य परीक्षा में देखा है, उसके आधार पर तथ्यात्मक रूप से गलत हैं क्योंकि पुनरीक्षणकर्ता घटनास्थल से "विधिविरुद्ध जमाव" द्वारा अपराध कारित किए जाने के पश्चात् ही भागा था । उसके (अभि. सा. 9) कथन में यह भी आया है कि मकान से जाते समय गोलियां भी चलाई गईं थी । इसके अतिरिक्त, उच्च न्यायालय द्वारा पुनरीक्षणकर्ता के पक्ष में उसे निर्दोष घोषित करते हुए पूरी तरह से अनावश्यक उपधारणा की गई है । इस न्यायालय की राय में, विचारण न्यायालय ने अभि. सा. 9 के साक्ष्य के आधार पर अभियुक्त को समन करके पूरी तरह से सही किया था जबकि उच्च न्यायालय ने अभियुक्त के पुनरीक्षण आवेदन को मंजूर करके गंभीर गलती की थी । मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में और धारा 319 के अधीन न्यायालय की शक्तियों के आधार पर तथा अभि. सा. 9 के साक्ष्य के आधार पर विचारण न्यायालय के लिए पुनरीक्षणकर्ता सहित तीनों अभियुक्तों को समन करना पूरी तरह से आवश्यक था । उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए तर्काधार को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के अधीन आवेदन पर विचार करने के प्रक्रम पर स्वीकार नहीं किया जा सकता । साक्ष्य के गुणागुण का मूल्यांकन विचारण के दौरान साक्षियों की प्रतिपरीक्षा और न्यायालय की संवीक्षा द्वारा किया जाना चाहिए । यह धारा 319 के प्रक्रम पर नहीं किया जाना चाहिए, यद्यपि वर्तमान मामले में उच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से वही किया है । इसके अलावा, उच्च न्यायालय ने इस महत्वपूर्ण तथ्य का मूल्यांकन नहीं किया कि

अभियुक्तों द्वारा सामना किए जा रहे आरोप भारतीय दंड संहिता की धारा 458, 460, 323, 285, 302, 148 और 149 के अधीन थे । इस प्रकार, आरोपों में से एक आरोप धारा 149 के अधीन है, जो विधिविरुद्ध जमाव का सदस्य होने के कारण है और भारतीय दंड संहिता की धारा 149 के अधीन अपराध को लागू करने के लिए किसी व्यक्ति का मात्र विधिविरुद्ध जमाव का भाग होना चाहिए । कोई विनिर्दिष्ट व्यक्तिगत भूमिका या कार्य का होना तात्विक नहीं है । भारतीय दंड संहिता की धारा 149 को (भारतीय दंड संहिता की धारा 141 के साथ) पढ़ने मात्र से यह स्पष्ट होता है कि किसी विधिविरुद्ध जमाव के सदस्य पर कोई स्पष्ट कृत्य आरोपित किए जाने की आवश्यकता नहीं है । "जब आरोप भारतीय दंड संहिता की धारा 149 के अधीन हो, भले ही किसी विशिष्ट व्यक्ति पर कोई स्पष्ट कृत्य अभ्यारोपित न किया गया हो, तो विधिविरुद्ध जमाव के भाग के रूप में अभियुक्त की मौजूदगी दोषसिद्धि के लिए पर्याप्त है ।" दांडिक विचारण का संपूर्ण प्रयोजन मामले की सच्चाई का पता लगाना है । जब एक बार न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि उसके समक्ष यह साक्ष्य है कि अभियुक्त ने अपराध किया है, तो न्यायालय ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाही कर सकता है । किसी अभियुक्त को समन करने के प्रक्रम पर, न्यायालय का प्रथमदृष्ट्या समाधान हो जाना चाहिए । न्यायालय के समक्ष जो साक्ष्य था वह उस प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का था जिसने न्यायालय के समक्ष स्पष्ट रूप से कथन किया था कि अन्य के साथ-साथ, पुनरीक्षणकर्ता द्वारा अपराध किया गया है । न्यायालय को इस साक्षी की प्रतिपरीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है । यदि धारा 319 के अधीन ऐसा आवेदन किया गया है, तो वह उसी प्रक्रम पर ही विचारण को रोक सकता है । इस साक्षी की और अन्य साक्षियों की विस्तृत परीक्षा विचारण की विषयवस्तु है जो नए सिरे से शुरु की जानी चाहिए । इस न्यायालय की सुविचारित राय में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के अधीन तीनों को अभियुक्तों के रूप में समन करने के लिए अभियोजन पक्ष ने अपने मामले को पूरी तरह से सिद्ध किया है जिससे वे भी विचारण का सामना कर सकें । (पैरा 5, 7, 8, 9, 10, 11 और 13)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2021]	2021 एस. सी. सी. ऑनलाइन एस. सी. 632 : **मंजीत सिंह** बनाम **हरियाणा राज्य और अन्य** ;	9
[2014]	(2014) 3 एस. सी. सी. 92 : **हरदीप सिंह** बनाम **पंजाब राज्य और अन्य** ;	11, 12
[2003]	ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 539 : **यूनिस** उर्फ **करिया** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ।	10

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2023 की दांडिक अपील सं. 2195.

2021 के दांडिक पुनरीक्षण सं. 452 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ द्वारा तारीख 2 मार्च, 2022 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री राम नरेश यादव और सूर्यवीर

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री विशाल महाजन, उप महाधिवक्ता, डा. मोनिका गुसैन, श्रीयश उदय ललित, अभिनव अग्रवाल और इशान जॉर्ज

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सुधांशु धुलिया ने दिया ।

न्या. धुलिया – इजाजत दी गई ।

2. अपीलार्थी/शिकायतकर्ता की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री राम नरेश यादव, राज्य/प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से उप महाधिवक्ता श्री विशाल महाजन और प्रत्यर्थी सं. 2 की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री श्रीयस उदय ललित को सुना ।

3. इस न्यायालय के समक्ष अपीलार्थी मामले में इत्तिलाकर्ता है और 2008 के सेशन विचारण सं. 8 में, जो अपर सेशन न्यायाधीश, सिरसा, हरियाणा के समक्ष आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25 के साथ पठित भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 458, 460, 323, 302, 148, 149 और 285 के अधीन चल रहा है, एक अभियोजन साक्षी

(अभि. सा. 9) है । घटना तारीख 7 सितंबर, 2017 की अर्द्ध-रात्रि में 12.30 बजे की है जो सिरसा, हरियाणा में घटी थी । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट से प्रकट होता है कि कुल 15 हमलावर थे जिन्होंने अर्द्ध-रात्रि में शिकायतकर्ता के मकान में लगी जंजीर को तोड़कर खोला था और मकान में रहने वाले निवासियों पर हमला करने के लिए आए थे । इन हमलावरों में से जिन सात को नामित किया गया था वे लाठी लिए हुए थे और नामित तीन हमलावर/अभियुक्त अर्थात् रमेश गांधी, कालू जाखड़ और पवन क्रमश: बंदूक और पिस्तौलों से लैस थे । पुलिस ने अन्वेषण के पश्चात् नौ व्यक्तियों के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया था किंतु रमेश गांधी, कालू जाखड़ या पवन के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल नहीं किया जिनके नाम आरोप पत्र के स्तंभ 2 में रखे गए थे । विचारण आरंभ होने के पश्चात् और जब शिकायतकर्ता की अभि. सा. 9 के रूप में परीक्षा की जा रही थी, तो उसने अपनी मुख्य परीक्षा में प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के रूप में संपूर्ण घटना का प्रकटन किया, जिसमें उसने असंदिग्ध रूप से इन तीनों हमलावरों अर्थात् रमेश गांधी (प्रत्यर्थी सं. 2), कालू जाखड़ और पवन की भूमिकाओं का भी उल्लेख किया जो प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में नामित थे किंतु आरोप पत्र में अभियुक्त नहीं बनाया गया था ।

4. अपीलार्थी द्वारा उसके तुरंत पश्चात् इन तीनों व्यक्तियों रमेश गांधी, कालू जाखड़ और पवन को अभियुक्तों के रूप में समन करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के अधीन एक आवेदन दिया गया जिससे वे भी विचारण का सामना कर सकें । इस आवेदन को, जैसा कि हमने पहले ही उल्लेख किया है, मंजूर किया गया किंतु पुनरीक्षण में उच्च न्यायालय द्वारा इस आदेश को अपास्त कर दिया गया ।

5. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 की व्याप्ति की परीक्षा करने से पूर्व, अभि. सा. 9, शिकायतकर्ता द्वारा अपनी मुख्य परीक्षा में किए गए कथन पर विचार करना सुसंगत होगा क्योंकि वह ही तीनों व्यक्तियों को बुलाने का आधार है । अभि. सा. 9 ने अपनी मुख्य परीक्षा में कथन किया कि तारीख 7 सितंबर, 2017 को वह रात्रि का भोजन करने के पश्चात् अपने छोटे भाई प्रदीप कुमार और अपने चचेरे भाई बिजेन्द्र सहित अपने मकान के प्रांगण में सो रहा था । उसका पिता हनुमान

(मृतक) भी प्रांगण में सो रहा था । मकान का मुख्य दरवाजा बंद था । उसका चाचा सुभाष, जयबीर और राज कुमार भी अपने मकानों में सो रहे थे । लगभग 12.30 बजे अर्थात् अर्द्ध-रात्रि में पंद्रह व्यक्ति अपने हाथों में 'लाठी' और 'डंडे' लेकर जंजीर तोड़कर साथ लगे कमरे से उनके मकान में घुसे । दो व्यक्ति अपने हाथों में पिस्तौल लिए हुए थे जिसे बल्ब की रोशनी में देखा जा सका था । उसने फिर कहा कि रमेश गांधी के पास बंदूक थी, कालू जाखड़ और पवन पिस्तौलों से लैस थे और शेष लाठी और डंडे लिए हुए थे । उन्होंने पहले ललकारा और फिर उन सभी की पिटाई करने लगे और धमकी दी कि आज वे शराब बेचने के लिए उन्हें सबक सिखाकर रहेंगे । जब वे उन तीनों पर प्रहार कर रहे थे तब उसका पिता हनुमान उनके बचाव में आया, जिस पर सुभाष ने अपनी लाठी से प्रहार किया । उसने फिर कहा कि सभी व्यक्ति उसके पिता को क्षतियां पहुंचा रहे थे और जब वे अंतत मकान से गए, तो वे अपने आयुधों से गोली चलाते हुए गए थे । उसके थोड़ा लंबे वृत्तांत का यह कुछ आवश्यक ब्यौरा है ।

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 निम्नलिखित है :–

> "319. अपराध के दोषी प्रतीत होने वाले अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने की शक्ति – (1) जहां किसी अपराध की जांच या विचारण के दौरान साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि किसी व्यक्ति ने, जो अभियुक्त नहीं है, कोई ऐसा अपराध किया है जिसके लिए ऐसे व्यक्ति का अभियुक्त के साथ विचारण किया जा सकता है, वहां न्यायालय उस व्यक्ति के विरुद्ध उस अपराध के लिए जिसका उसके द्वारा किया जाना प्रतीत होता है, कार्यवाही कर सकता है ।
>
> (2) जहां ऐसा व्यक्ति न्यायालय में हाजिर नहीं है वहां पूर्वोक्त प्रयोजन के लिए उसे मामले को परिस्थितियों की अपेक्षानुसार, गिरफ्तार या समन किया जा सकता है ।
>
> (3) कोई व्यक्ति जो गिरफ्तार या समन न किए जाने पर भी न्यायालय में हाजिर है, ऐसे न्यायालय द्वारा उस अपराध के लिए,

जिसका उसके द्वारा किया जाना प्रतीत होता है, जांच या विचारण के प्रयोजन के लिए निरुद्ध किया जा सकता है ।

(4) जहां न्यायालय किसी व्यक्ति के विरुद्ध उपधारा (1) के अधीन कार्यवाही करता है, वहां –

(क) उस व्यक्ति के बारे में कार्यवाही फिर से प्रारंभ की जाएगी और साक्षियों को फिर से सुना जाएगा (ख) खंड (क) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, मामले में ऐसे कार्यवाही की जा सकती है, मानो वह व्यक्ति उस समय अभियुक्त व्यक्ति या जब न्यायालय ने उस अपराध का संज्ञान किया था जिस पर जांच या विचारण प्रारंभ किया गया था ।"

धारा 319 की उपधारा (1) में किसी ऐसे व्यक्ति को अभियुक्त के रूप में समन करना न्यायालय के स्वविवेक पर छोड़ा गया है, जहां चल रहे विचारण में यदि साक्ष्य से प्रतीत होता है कि ऐसे किसी व्यक्ति ने (जो अभी तक विचारण में अभियुक्त नहीं है) कोई अपराध किया है जिसके लिए ऐसे व्यक्ति का अन्य अभियुक्त के साथ विचारण किया जा सकता है । यह न्यायिक विवेकाधिकार उन परिस्थितियों द्वारा पूरी तरह से सीमित है जिनका धारा 319 की उपधारा (1) में उल्लेख किया गया है । हमने पहले ही अभि. सा. 9 (प्रत्यक्षदर्शी साक्षी) द्वारा अपनी मुख्य परीक्षा में किए गए कथन को निर्दिष्ट किया है । हमारे विचार से, यहां न्यायालय के पास इस बात पर विचार करते हुए कि अब उसके समक्ष अभि. सा. 9 के कथन के रूप में साक्ष्य है, अभियुक्तों को समन करने के सिवाय कोई विकल्प नहीं था ।

6. समन करने के आदेश के अनुसरण में तीनों अभियुक्तों, जिन्हें समन किया गया था, में से केवल एक अर्थात् रमेश गांधी, जो प्रत्यर्थी सं. 2 है, ने पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया था जिसे तारीख 2 मार्च, 2022 के आदेश द्वारा मंजूर किया गया था ।

7. हमारी सुविचारित राय में, उच्च न्यायालय ने मामले का मूल्यांकन दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के सही परिप्रेक्ष्य में नहीं

किया था । श्री रमेश गांधी (उन तीन अभियुक्तों में से एक जिन्हें समन किया गया था) के पुनरीक्षण आवेदन को इन कारणों से मंजूर किया गया था कि उसे अन्वेषण के दौरान निर्दोष पाया गया था और उसने कदापि बंदूक का प्रयोग नहीं किया था और वास्तव में घटनास्थल से भाग गया था । ये मताभिव्यक्तियां भी, जो हमने अभी-अभी अभि. सा. 9 की मुख्य परीक्षा में देखा है, के आधार पर तथ्यात्मक रूप से गलत हैं क्योंकि पुनरीक्षणकर्ता घटनास्थल से "विधिविरुद्ध जमाव" द्वारा अपराध कारित किए जाने के पश्चात् ही भागा था । उसके (अभि. सा. 9) कथन में यह भी आया है कि मकान से जाते समय गोलियां भी चलाई गईं थी । इसके अतिरिक्त, उच्च न्यायालय द्वारा पुनरीक्षणकर्ता के पक्ष में उसे निर्दोष घोषित करते हुए पूरी तरह से अनावश्यक उपधारणा की गई है । उच्च न्यायालय ने निम्नलिखित कारण दिए हैं :–

> "आवेदक को अन्वेषण के दौरान निर्दोष पाया गया था । अभिलेख से भी यह सिद्ध नहीं हो सका है कि क्या आवेदक पर कोई क्षति पहुंचाने का अभ्यारोपण किया जा सकता है और यहां तक कि स्वयं शिकायतकर्ता के वृत्तांत के अनुसार आवेदक अभिकथित रूप से घटनास्थल से भाग गया था । इस प्रकार, अभिलेख पर की सामग्री से आवेदक को एक अतिरिक्त अभियुक्त के रूप में समन करने का उपयुक्त मामला नहीं बनता है ।
>
> मामले को एक अन्य दृष्टिकोण से भी देखा जा सकता है । शिकायतकर्ता का यह पक्षकथन है कि आवेदक एक बंदूक से लैस होकर अन्य सह-अभियुक्तों के साथ घटनास्थल पर आया था । तथापि, सामान्य समझ-बूझ से यह प्रतीत नहीं होता है कि कोई व्यक्ति पूर्वचिंतित मन से एक बंदूक के साथ घटनास्थल पर आकर गोली चलाए बिना ही या गोली चलाने का प्रयत्न किए बिना ही भाग जाएगा । इससे स्पष्ट रूप से आवेदक को मिथ्या फंसाया जाना इंगित होता है ।"

8. हमारी राय में, विचारण न्यायालय ने अभि. सा. 9 के साक्ष्य के आधार पर अभियुक्त को समन करके पूरी तरह से सही किया था जबकि उच्च न्यायालय ने अभियुक्त के पुनरीक्षण आवेदन को मंजूर करके

गंभीर गलती की थी । मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में और धारा 319 के अधीन न्यायालय की शक्तियों के आधार पर तथा अभि. सा. 9 के साक्ष्य के आधार पर विचारण न्यायालय के लिए पुनरीक्षणकर्ता सहित तीनों अभियुक्तों को समन करना पूरी तरह से आवश्यक था ।

9. उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए तर्काधार को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के अधीन आवेदन पर विचार करने के प्रक्रम पर स्वीकार नहीं किया जा सकता । साक्ष्य के गुणागुण का मूल्यांकन विचारण के दौरान साक्षियों की प्रतिपरीक्षा और न्यायालय की संवीक्षा द्वारा किया जाना चाहिए । यह धारा 319 के प्रक्रम पर नहीं किया जाना चाहिए, यद्यपि वर्तमान मामले में उच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से वही किया है । इसके अलावा, उच्च न्यायालय ने इस महत्वपूर्ण तथ्य का मूल्यांकन नहीं किया कि अभियुक्तों द्वारा सामना किए जा रहे आरोप भारतीय दंड संहिता की धारा 458, 460, 323, 285, 302, 148 और 149 के अधीन थे । इस प्रकार, आरोपों में से एक आरोप धारा 149 के अधीन है, जो विधिविरुद्ध जमाव का सदस्य होने के कारण है और भारतीय दंड संहिता की धारा 149 के अधीन अपराध को लागू करने के लिए किसी व्यक्ति का मात्र विधिविरुद्ध जमाव का भाग होना चाहिए । कोई विनिर्दिष्ट व्यक्तिगत भूमिका या कार्य का होना तात्विक नहीं है । (**मंजीत सिंह** बनाम **हरियाणा राज्य और अन्य**[1] वाले मामले का पैरा 38 देखें) ।

10. भारतीय दंड संहिता की धारा 149 को (भारतीय दंड संहिता की धारा 141 के साथ) पढ़ने मात्र से यह स्पष्ट होता है कि किसी विधिविरुद्ध जमाव के सदस्य पर कोई स्पष्ट कृत्य आरोपित किए जाने की आवश्यकता नहीं है । "जब आरोप भारतीय दंड संहिता की धारा 149 के अधीन हो, भले ही किसी विशिष्ट व्यक्ति पर कोई स्पष्ट कृत्य अभ्यारोपित न किया गया हो, तो विधिविरुद्ध जमाव के भाग के रूप में अभियुक्त की मौजूदगी दोषसिद्धि के लिए पर्याप्त है ।' (**यूनिस** उर्फ **करिया** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[2] वाला मामला देखें) ।

---

[1] 2021 एस. सी. सी. ऑनलाइन एस. सी. 632.

[2] ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 539.

11. दांडिक विचारण का संपूर्ण प्रयोजन मामले की सच्चाई का पता लगाना है । जब एक बार न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि उसके समक्ष यह साक्ष्य है कि अभियुक्त ने अपराध किया है, तो न्यायालय ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाही कर सकता है । किसी अभियुक्त को समन करने के प्रक्रम पर, न्यायालय का प्रथमदृष्ट्या समाधान हो जाना चाहिए । न्यायालय के समक्ष जो साक्ष्य था वह उस प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का था जिसने न्यायालय के समक्ष स्पष्ट रूप से कथन किया था कि अन्य के साथ-साथ, पुनरीक्षणकर्त्ता द्वारा अपराध किया गया है । न्यायालय को इस साक्षी की प्रतिपरीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है । यदि धारा 319 के अधीन ऐसा आवेदन किया गया है, तो वह उसी प्रक्रम पर ही विचारण को रोक सकता है । इस साक्षी की और अन्य साक्षियों की विस्तृत परीक्षा विचारण की विषयवस्तु है जो नए सिरे से शुरु की जानी चाहिए । **हरदीप सिंह** बनाम **पंजाब राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में संविधान न्यायपीठ के निर्णय में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 की व्याप्ति और परिधि की चर्चा और विस्तारपूर्वक विचार किया गया था, जिसमें उसने यह कहा :–

> "12. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 की उत्पत्ति ज्यूडेक्स डेमंटर कम नोसेंस एब्सोल्विटर (जब दोषी को दोषमुक्त किया जाता है तो न्यायाधीश की निंदा होती है) के सिद्धांत से होती है और इस सिद्धांत को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के अधिनियमन में अंतर्निहित व्याप्ति और भावना को स्पष्ट करने के लिए एक प्रकाशस्तंभ के रूप में प्रयुक्त किया जाना चाहिए ।
>
> 13. न्यायालय का कर्तव्य है कि वह वास्तविक अपराधी को दंडित करके न्याय करे । जहां अन्वेषण अभिकरण किसी कारण से वास्तविक अपराधियों में से किसी को अभियुक्त के रूप में क्रमबद्ध नहीं करता है, तो न्यायालय उक्त अभियुक्त को विचारण का सामना करने के लिए बुलाने में निशक्त नहीं है ।"

---

[1] (2014) 3 एस. सी. सी. 92.

12. **हरदीप सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने आगे यह कहा कि न्यायालय को धारा 319 के प्रक्रम पर केवल यह देखना चाहिए कि क्या एक प्रथमदृष्ट्या मामला बनाया गया है या नहीं यद्यपि यह समाधान उच्च कोटि का होना चाहिए :–

> "95. संज्ञान लेने के समय पर न्यायालय को यह देखना चाहिए कि क्या अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए प्रथमदृष्ट्या मामला बनाया गया है या नहीं । यद्यपि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के अधीन प्रथमदृष्ट्या मामले की कसौटी वैसी ही है, किंतु अपेक्षित समाधान की मात्रा अधिक कठोर है । विकास बनाम राजस्थान राज्य वाले मामले में इस न्यायालय की एक दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि न्यायालय के व्यक्तिपरक समाधान के आधार पर यदि साक्ष्य से प्रतीत होता है कि ऐसे किसी व्यक्ति ने, जो अभियुक्त नहीं है, कोई ऐसा अपराध किया है जिसके लिए ऐसे व्यक्ति का पहले ही दोषारोपित अभियुक्त व्यक्तियों के साथ विचारण किया जा सकता है, जैसा कि मामले की परिस्थितियों में अपेक्षित हो, ऐसे व्यक्ति को 'गिरफ्तार' या 'समन' किया जा सकता है ।
>
> पैरा 106 में निम्नलिखित मत व्यक्त किया गया है :–
>
> इस प्रकार, हम अभिनिर्धारित करते हैं कि यद्यपि न्यायालय के समक्ष पेश किए गए साक्ष्य से केवल एक प्रथमदृष्ट्या मामला सिद्ध होना चाहिए और इसे प्रतिपरीक्षा की कसौटी पर कसा जाना आवश्यक नहीं है, तो भी उसकी सहापराधिता की मात्र अधिसंभाव्यता की अपेक्षा अधिक प्रबल साक्ष्य होना चाहिए । जो कसौटी लागू की जानी चाहिए वह उस प्रथमदृष्ट्या मामले की अपेक्षा अधिक है जो आरोप विरचित करने के समय पर प्रयोग की जाती है किंतु उस समाधान से इस सीमा तक कम है कि साक्ष्य से, यदि खंडन नहीं किया जाता है, दोषसिद्धि हो जाएगी । ऐसे समाधान के अभाव में, न्यायालय को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के अधीन शक्ति

का प्रयोग करने से बचना चाहिए । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 में यदि 'साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि किसी व्यक्ति ने, जो अभियुक्त नहीं है, कोई ऐसा अपराध किया है' का उपबंध करने का प्रयोजन 'जिसके लिए ऐसे व्यक्ति का अभियुक्त के साथ विचारण किया जा सकता है, शब्दों से स्पष्ट होता है ।' प्रयुक्त किए गए शब्द यह नहीं हैं कि 'जिसके लिए ऐसे व्यक्ति को दोषसिद्ध किया जा सकता है' । अत: दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के अधीन कार्य करते हुए न्यायालय के लिए अभियुक्त की दोषिता के बारे में कोई राय बनाने के लिए कोई गुंजाइश नहीं है ।"

13. हमारी सुविचारित राय में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के अधीन तीनों को अभियुक्तों के रूप में समन करने के लिए अभियोजन पक्ष ने अपने मामले को पूरी तरह से सिद्ध किया है जिससे वे भी विचारण का सामना कर सकें ।

14. इन परिस्थितियों में, यह अपील मंजूर की जाती है और उच्च न्यायालय के तारीख 2 मार्च, 2022 के आदेश को तद्द्वारा अपास्त किया जाता है । यह भी निदेश दिया जाता है कि विचारण को अब विधि के अनुसार यथासंभव शीघ्रता से अग्रसर किया जाएगा ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.

गतांक से आगे.....

स्वयं-भू के बाबत दलील

175. यहां पर इस बात का उल्लेख किया जाना महत्वपूर्ण होगा कि श्री पारासरन ने प्रत्युत्तर देते हुए किंचित रूप से भिन्न दलील दी है । वादियों की तरफ से वाद संख्या 5 में दी गई आरंभिक दलील यह थी कि विवादित स्थल पर आस्था और विश्वास के साथ उपासना का निर्वहन किए जाने का आशय यह था कि वह स्थान भगवान राम का जन्मस्थान है और इस न्यायालय के लिए यही आशय पर्याप्त है कि विवादित स्थल को विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया जाए । इसके उत्तर में दी गई दलील यह थी कि यह भूमि स्वयं-भू देवता (अर्थात् स्वयं प्रकट देवता) है । श्री पारासरन ने दलील दी कि हिंदू धर्म में उपासना के निर्वहन के प्रयोजनार्थ किसी प्रतिमा का विद्यमान होना आवश्यक नहीं है । उन्होंने दलील दी कि प्रतिमा देवत्व के प्रतीक के रूप में पवित्र होती है तथापि, संपूर्ण उपासना एक अदृश्य सर्वोच्च शक्ति के प्रति समर्पित होती है । प्रतिमाओं और देवताओं की बहुलता सर्वोच्च सत्ता के मात्र विभिन्न पहलू प्रस्तुत करती है । इसलिए विधि को उस प्रत्येक स्वरूप को मान्यता प्रदान करनी चाहिए जिसमें ईश्वर ने स्वयं का प्रकटीकरण किया है । उन्होंने दलील दी कि द्वितीय वादी स्वयं देवता हैं जिन्होंने 'स्वयं का प्रकटीकरण भूमि के रूप में' किया है और इसलिए राम जन्मभूमि का विधिक व्यक्तित्व विवादित स्थल की अचल संपत्ति में निहित है । श्री पारासरन ने निवेदन किया कि विवादित स्थल उपासना न केवल भगवान श्रीराम को अर्पित की जाती है बल्कि उस भूमि को भी अर्पित की जाती है । जिस भूमि पर अभिकथित रूप से भगवान श्रीराम का जन्म हुआ था । इस संबंध में उन विभिन्न मंदिरों की विद्यमानता का अवलंब लिया गया जहां प्रतिमा की अनुपस्थिति के बावजूद उपासना का निर्वहन किया जाता है – जिनमें तमिलनाडु स्थित चिदम्बरम मंदिर प्रमुख है ।

176. श्री पारासरन ने द्वितीय वादी के विधिक व्यक्तित्व को स्थापित किए जाने के प्रयोजनार्थ दलील दी कि राम जन्मभूमि 'स्वयं-भू' देवता है और उसके विधिक व्यक्तित्व को मान्यता प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ न्यायालय से यह अपेक्षित नहीं है कि उसका समर्पण या धर्मापण किया जाए । उन्होंने दलील दी कि इस देवता की आत्यंतिक

प्रकृति के कारण इसके चारों तरफ परिक्रमा का निर्वहन किया जाना आवश्यक होता है जिसके द्वारा इस संपत्ति को न्यायिक व्यक्तित्व प्रदान किए जाने के साथ-साथ इसकी चौहद्दी का भी सीमांकन हो जाता है । श्री पारासरन ने आगे दलील दी कि विधिक व्यक्तित्व के प्रदान किए जाने के द्वारा भूमि को अतिक्रमण या अन्य संक्रमण से संरक्षण प्रदान किए जाने की आवश्यकता की भी पूर्ति हो जाती है । इस भूमि के बाबत यह विश्वास किया जाता है कि यह भगवान श्रीराम का जन्मस्थान है और हिंदुओं के लिए यह भूमि को भक्तिभाव का केंद्र है, जो वहां पर उपासना करने की ईप्सा कर रहे हैं । परिणामस्वरूप भूमि को उसके संरक्षण के प्रयोजनार्थ विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया जाना चाहिए । श्री पारासरन ने अपनी इस दलील के समर्थन में निम्नलिखित निर्णयज विधि का अवलंब लिया :–

(i) **श्री आदि विशेश्वर आफ काशी विश्वनाथ टेंम्पल** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1]

(ii) **राम जानकीजी डीटीज़** बनाम **बिहार राज्य** (उपरोक्त)

(iii) **योगेन्द्र नाथ नास्कर** बनाम **सी. आई. टी, कलकत्ता** (उपरोक्त)

(iv) **भूपतिनाथ वाला मामला** (उपरोक्त)

(v) **मनोहर गणेश ताम्बेकर** बनाम **लखमीराम गोविंदराम** (उपरोक्त)

(iv) **गुरुवायूर देवस्वम् मैनेजिंग कमेटी** बनाम **सी. के. राजन**[2]

(vi) **श्री सभानायगर टेंम्पल, चिदम्बरम** बनाम **तमिलनाडु राज्य**[3]

(vii) **पिनचाई** बनाम **कमिशनर, हिंदू रिलीजियस एंड चेरिटेबल इनडाउमेंट्स बोर्ड**[4]

(viii) **सरस्वथी अम्माल** बनाम **राजगोपाल अम्माल**[5]

---

[1] (1997) 4 एस. सी. सी. 606.

[2] (2003) 7 एस. सी. सी. 546.

[3] (2009) 4 सी. टी. सी. 801.

[4] ए. आई. आर. 1971 मद्रास 405.

[5] [1954] एस. सी. आर. 277.

(ix) **कामराजू वेंकट कृष्ण राव** बनाम **उप-कलक्टर** (उपरोक्त)

(x) **थायारम्माल** बनाम **कनकम्मल** (उपरोक्त)

(xi) **शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, अमृतसर** बनाम **सोमनाथ दास** (उपरोक्त) और,

(xii) **सपनेश्वर पूजापंडा** बनाम **रत्नाकर महापात्र**[1]

177. डा. धवन ने यह दलील दिए जाने के प्रयोजनार्थ बीच में मध्यक्षेप करते हुए कहा कि यद्यपि हिंदुत्व में स्वयंभू देवता को मान्यता प्रदान की गई है, फिर भी ऐसे सभी मामलों को भौतिक रूप से प्रकटन की विद्यमानता द्वारा विशेषित किया गया है । यदि श्रद्धालुओं की आस्था और विश्वास के मामलों को छोड़ दिया जाए, तो विवादित स्थल को किसी भी प्रकार की अन्य भूमि से पृथक् नहीं किया जा सकता ।

178. श्री पारासरन के विचार में यदि विवादित स्थल पर देवत्व के प्रकटन के साक्ष्य से संबंधित कोई विशिष्ट विशेषता अनुपस्थित भी हो, तो भी श्रद्धालुओं की आस्था और विश्वास ही इस तथ्य को मान्यता प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ पर्याप्त होगी कि विवादित स्थल स्वयं-भू देवता हैं । श्री पारासरन द्वारा प्रस्तुत की गई पुनरीक्षित दलील का तात्पर्य यह है कि इस न्यायालय के लिए श्रद्धालुओं की आस्था और विश्वास ही विवादित स्थल को स्वयं-भू देवता के रूप में मान्यता प्रदान किए जाने और परिणामस्वरूप उसको विधिक व्यक्तित्व प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ पर्याप्त है । वह सीमा, जिस तक श्री पारासरन द्वारा प्रत्युत्तर में दलीलें दी गईं, आस्था और विश्वास के आधार, जिसका अवलंब लेते हुए विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया गया, पर दी गई पूर्ववर्ती दलीलों के सामंजस्य में हैं । वाद संख्या 5 में वादियों द्वारा दी गईं दोनों दलीलों में श्रद्धालुओं की आस्था और विश्वास के आधार पर विधिक व्यक्तित्व प्रदान किए जाने को एकमात्र आधार होने का दावा किया गया है । आस्था और विश्वास के आधार पर दी गई दलीलों का पहले ही विश्लेषण ऊपर किया जा चुका है । तथापि, यह दलील कि विवादित भूमि स्वयं-भू देवता है, बंदोबस्तियों की हिंदू विधि के परिक्षेत्र

[1] ए. आई. आर. 1916 पटना 46.

के परे अतिरिक्त विवाद्यक उत्पन्न करती है । यही वह विवाद्यक हैं जिन पर चर्चा किया जाना आवश्यक है ।

179. वाद संख्या 5 में वादियों द्वारा दी गई दलीलों पर विचार करते हुए यह आवश्यक है कि उनके द्वारा प्रत्युत्तर में उल्लिखित निर्णयज विधियों का उल्लेख किया जाए । वादियों द्वारा इन निर्णयज विधियों के माध्यम से की गई मताभिव्यक्तियों, जिनका अवलंब लिया गया है, को सुविधा के आधार पर उद्धृत किया गया है और यदि उस संदर्भ को समझ लिया जाए, जिसमें ये मताभिव्यक्तियां की गईं, तो वे उन दलीलों का अवलंब नहीं लेंगे, जो श्री पारासरन द्वारा दी गईं हैं ।

180. वादियों द्वारा **गुरुवायूर देवस्वम् मैनेजिंग कमेटी** (उपरोक्त) वाले मामले का अवलंब लेते हुए यह दलील दी गई कि मंदिर स्वयमेव ही विधिक अस्तित्व होता । इस मामले में अंतर्वलित विवाद देवस्वम समिति द्वारा मंदिर के मामलों के प्रबंधन से संबंधित था । इस मामले, जिसमें राज्य प्राधिकारियों द्वारा कार्रवाई या अकर्मण्यता के कारण श्रद्धालुओं के संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 के अधीन मूल अधिकारों का अतिक्रमण किया गया था, में न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने अभिनिर्धारित किया कि श्रद्धालु जनहित मुकदमा फाइल करने के द्वारा उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय की शरण में जा सकते हैं । निर्णय के पैरा 40 में एकमात्र यह निदेश अभिलिखित है कि मंदिर एक विधिक व्यक्ति है । न्यायमूर्ति एस. बी. सिन्हा ने उल्लेख किया :–

> "40. श्री सुब्बाराव के अनुसार जनहित मुकदमे की रूप में आरंभ की गई कोई भी कार्रवाई उच्च न्यायालय या इस न्यायालय के समक्ष फाइल की जा सकती है, जिसमें यह पाया जाता है कि राज्य या अन्य कानूनी कृत्यकारी कानूनी उपबंधों की विद्यमानता के बावजूद श्रद्धालुओं की शिकायतों के निस्तारण के प्रयोजनार्थ उन उपबंधों का आश्रय नहीं ले रहे हैं । <u>किसी भी स्थिति में चूंकि हिंदू मंदिर के विधिक व्यक्ति होता है, इसलिए यह आत्यंतिक तथ्य कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 हिंदू मंदिर के स्वरूप वाले उस विधिक व्यक्ति को संरक्षण प्रदान करती है और इस प्रयोजनार्थ अनुच्छेद 226 और 32 का आश्रय भी लिया जा सकता है</u> । इस संबंध

में हमारा ध्यान योगेन्द्र नाथ **बनाम** सी. आई. टी. (उपरोक्त) और **मनोहर गणेश ताम्बेकर** (उपरोक्त) वाले मामलों की ओर आकर्षित किया गया ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

यह मताभिव्यक्ति विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलीलों का भाग है कि मंदिर विधिक व्यक्ति होता है और इस दलील को न्यायालय द्वारा अभिलेख पर अभिलिखित कर लिया गया था । इस बाबत कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है कि इस न्यायालय ने इस दलील को स्वीकार कर लिया था कि मंदिर विधिक व्यक्ति होता है । इस विनिश्चय या पैरा 40 में की गई मताभिव्यक्ति का अवलंब यह दलील दिए जाने के प्रयोजनार्थ नहीं लिया जा सकता कि मंदिर विधिक व्यक्ति होता है ।

181. तत्पश्चात् श्री पारासरन ने **श्री सभानायगर टेंम्पल, चिदम्बरम** (उपरोक्त) वाले मामले का अवलंब यह दर्शित किए जाने के प्रयोजनार्थ लिया कि बिना किसी प्रतिष्ठापित मूर्ति के मंदिर की विद्यमानता अभिलिखित है । इस विनिश्चय में तमिलनाडु स्थित चिदम्बरम मंदिर का संक्षिप्त इतिहास अभिलिखित है । इस मामले में मद्रास उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ की तरफ से निर्णय पारित करते हुए न्यायमूर्ति टी. राजा ने उल्लिखित किया :–

"... चिदम्बरम मंदिर में एक गर्भगृह स्थित है जिसमें कोई मूर्ति स्थित नहीं है । वास्तव में वहां पर कोई लिंगम विद्यमान नहीं है किंतु दीवार के समक्ष एक पर्दा पड़ा हुआ है और जब लोग उपासना के लिए जाते हैं, तो पर्दे को उठा दिया जाता है, जिससे कि श्रद्धालु 'लिंगम' के दर्शन कर सकें । किंतु उत्साही श्रद्धालु देवत्व के चमत्कार अर्थात् वह स्थान जिसको 'अकासा लिंगम' के नाम से जाना जाता है, का अनुभव करते हैं कि भगवान शिव आकारहीन हैं । समस्त चढ़ावा पर्दे के समक्ष चढ़ाया जाता है । पूजन स्थान के इस स्वरूप को 'चिदम्बरा रहस्यम्' अर्थात् चिदम्बरम का रहस्य के नाम से जाना जाता है ।"

इस विनिश्चय से श्री पारासरन की इस दलील को बल मिलता है कि मंदिर बिना किसी प्रतिमा के भी विद्यमान हो सकता है । प्रतिमा

देवत्व का प्रकटन होती है और यह नहीं कहा जा सकता कि प्रतिमा की अनुपस्थिति के कारण कोई देवत्व विद्यमान नहीं है जिसको प्रार्थना अर्पित की जा सके । तथापि, मद्रास उच्च न्यायालय के समक्ष विचारार्थ यह प्रश्न उद्भूत हुआ कि क्या अपीलार्थी और उसके पूर्वज मंदिर के प्रतिष्ठापक थे और क्या यह मंदिर के पंथ निरपेक्ष के मामलों को राज्य द्वारा विनियमित किए जाने के प्रयोजनों के लिए मात्र किसी एक संप्रदाय से संबंधित मंदिर था । उच्च न्यायालय ने इस बात पर विचार नहीं किया कि क्या मंदिर विधिक व्यक्ति हो सकता है और यह विनिश्चय श्री पारासरन की इस दलील का समर्थन नहीं करता कि मात्र रिक्त भूमि या स्थान, जहां भौतिक रूप से किसी भी प्रकार के प्रकटन की अनुपस्थिति हो, को विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया जा सकता है । तथापि, उस मामले के तथ्य वर्तमान मामले के तथ्यों से तात्विक रूप से भिन्न हैं चूंकि चिदम्बरम मंदिर एक भौतिक संरचना है, जो एक विनिर्दिष्ट स्थल के चारों तरफ विनिर्दिष्ट हैं और जिसको पवित्र माना जाता है । यह मंदिर किसी प्रतिमा की अनुपस्थिति के बावजूद प्रतिमा के भौतिक रूप से प्रकटन के प्रयोजन को पूर्ण करता है और उपासना की संस्थागत प्रकृति को प्रदर्शित करता है । यह मामला हमारे समक्ष उपस्थित वर्तमान मामले के विपरीत भी है । हमारे समक्ष उपस्थित मामले में भगवान राम की प्रतिमा को उपासना अर्पित की जाती है । विवादित स्थल धार्मिक महत्व का स्थल है, किंतु यह सब बातें भूमि को विधिक व्यक्तित्व प्रदान किए जाने के लिए पर्याप्त नहीं हैं ।

182. **पिचाल** उर्फ **चोकालिंगम पिल्लई** बनाम **कमिश्नर फार हिन्दू रिलीजियस एंड चेरिटेबल इनडाउमेंट्स (एडमिनिट्रेटिव डिपार्टमेंट)**[1] वाले मामले का भी अवलंब यह दलील दिए जाने के प्रयोजनार्थ लिया गया कि मंदिर लोक धार्मिक उपासना स्थल के रूप में मान्यता प्राप्त होता है चाहे उसमें प्रतिमा अनुपस्थित ही क्यों न हो । यह मामला अवनी या पूरम स्थित श्री कल्याणसुंदेश्वर मंदिर से संबद्ध है । बीसवीं शताब्दी के आरंभ में चोकलिंगम पिल्लई नामक एक व्यक्ति ने श्री कल्याणसुंदेश्वर मंदिर के निर्माण और श्री कल्याणसुंदेश्वर भगवान को सम्मिलित करते हुए चार मूर्तियों को प्रतिष्ठापित किए जाने और उनकी निरंतर रूप से

[1] ए. आई. आर. 1971 मद्रास 405.

सेवा (पूजन, आरती और भोग) इत्यादि के प्रयोजनार्थ एक समर्पण विलेख निष्पादित किया था । चोकलिंगम पिल्लई की वर्ष 1926 में मृत्यु हो गई और अपीलार्थी वर्ष 1954 में निष्पादित एक समझौता विलेख को दृष्टि में रखते हुए मद्रास उच्च न्यायालय के समक्ष प्रबंध न्यासियों के रूप में पक्षकार बन गए । अपीलार्थियों पर यह आरोप था कि वे प्रतिमाओं के रखरखाव और उनकी सेवा में विफल रहे और हिंदू धार्मिक और धर्मार्थ बंदोबस्ती के आयुक्त ने मंदिर के प्रबंधन का कार्यभार संभालने के लिए एक योजना विरचित की । अपीलार्थियों ने आयुक्त की सक्षमता को इस आधार पर चुनौती दी कि यह मंदिर 1959 के मद्रास हिंदू रिलीजियस एंड चेरिटेबल इनडाउमेंट्स अधिनियम की धारा 6(20) के अधीन मंदिर नहीं है । अपीलार्थियों द्वारा दी गई प्राथमिक दलील यह थी कि श्री कल्याणसुन्देश्वर मंदिर में प्रतिष्ठापित प्रतिमाएं सम्यक् रूप से स्थापित नहीं की गई थी और उनकी प्राण प्रतिष्ठा भी नहीं की गई थी । मद्रास उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ की तरफ से निर्णय पारित करते हुए न्यायमूर्ति के रेड्डी ने अभिनिर्धारित किया कि उक्त अधिनियम की धारा 6(20) के अधीन किसी 'मंदिर' को उपासना स्थल के रूप में मान्यता प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ मूर्ति की विद्यमानता आवश्यक नहीं होती । उन्होंने आगे अभिनिर्धारित किया :–

> "... यह प्रतीत नहीं होता कि उपरोक्त मंदिरों में स्थापित पूर्वोक्त प्रतिमाओं को अगामा शास्त्रों में उल्लिखित धार्मिक संस्कारों और अनुष्ठानों के अनुसार स्थापित और प्राण प्रतिष्ठित किया गया है । किंतु वे हिंदू समुदाय द्वारा लंबे समय से उपासना के कारण सार्वजनिक रूप से धार्मिक उपासना के स्थान बन गए हैं । अत: हमारा यह विचार है कि हिंदू शास्त्रों द्वारा विहित प्राण प्रतिष्ठा इत्यादि जैसे संस्कारों के साथ प्रतिमाओं का प्रतिष्ठापन और प्राण प्रतिष्ठा सार्वजनिक धार्मिक उपासना के प्रयोजनार्थ प्रतिमाओं का प्रतिष्ठापन और उनकी प्राण प्रतिष्ठा अनिवार्य नहीं होती । किसी भी स्थिति में यह अधिनियम में 'मंदिर' की परिभाषा के अंतर्गत विधिक अपेक्षा नहीं है ...।"

इन दोनों बिंदुओं का उल्लेख लिया जाना चाहिए – न्यायालय द्वारा की गई मताभिव्यक्तियां 'मंदिर' की पूर्व विद्यमान कानूनी परिभाषा को

स्थापित किए जाने के संदर्भ में दी गई हैं । इस संदर्भ में मद्रास उच्च न्यायालय ने उल्लेख किया है कि किसी प्रतिमा की विद्यमानता किसी मंदिर की कानूनी परिभाषा को स्थापित किए जाने की पूर्वापेक्षा नहीं होती । द्वितीयतः, इस मामले में इस प्रश्न पर चर्चा नहीं की गई है कि क्या कोई मंदिर, जिसमें प्रतिमा विद्यमान न भी हो, विधिक व्यक्ति हो सकता है । यहां पर इस बात का उल्लेख किया जाना महत्वपूर्ण होगा कि मंदिर प्रतिमा की अनुपस्थिति के बावजूद अनेक वर्षों से विद्यमान था । इन मताभिव्यक्तियों के प्रकाश में इस विनिश्चय से श्री पारासरन द्वारा दी गई इस दलील को बल नहीं मिलता कि प्रतिमा की अनुपस्थिति या किसी स्वरूप के प्रकटन या प्रकटीकरण के किसी स्वरूप को अभिव्यक्त रूप से मान्यता की अनुपस्थिति में भूमि विधिक व्यक्ति गठित कर सकती है ।

183. श्री पारासरन ने यह दलील दिए जाने के प्रयोजनार्थ **सरस्वथी अम्माल** बनाम **राजगोपाल अम्माल** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का अवलंब लिया कि राम जन्मभूमि के नाम से जानी जाने वाली भूमि के बाबत व्यापक आस्था और उस भूमि का पूजन उसको विधिक व्यक्ति के रूप में मान्यता प्रदान किए जाने के लिए पर्याप्त है । इस मामले में न्यायालय एक निपटारा विलेख से संबद्ध था जिसके द्वारा किसी विधवा ने कतिपय अचल संपत्तियों के राजस्व को अपने पूर्ववर्ती पति की समाधि के नित्य पूजन और 'गुरु पूजन' के कार्य के लिए शाश्वत रूप से समर्पित कर दिया था । इस मामले में अपीलार्थियों द्वारा यह दलील दी गई कि संपत्ति का समर्पण पूजा और बड़े पैमाने पर वार्षिक 'श्राद्ध' के निर्वहन के लिए किया गया था और इस प्रकार यह समर्पण धार्मिक और धर्मार्थ प्रयोजनों के लिए था । न्यायमूर्ति बी. जगन्नाथदास ने इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ की तरफ से निर्णय पारित करते हुए इस दलील को यह मताभिव्यक्ति करते हुए अस्वीकृत कर दिया :–

> "6. ...इसलिए, वह सीमा जिस तक धार्मिक आधार पर किसी प्रयोजन के शाश्वत रूप से समर्पण के लिए विधिमान्य होने का दावा किया जाता है, यद्यपि वह दावा सार्वजनिक लाभ में न हो, यह दर्शित किया जाना चाहिए कि जहां तक हिंदुओं का संबंध है,

इस दावे के पीछे शास्त्रीय आधार उपलब्ध हैं । इसमें कोई संदेह नहीं कि तब तक अन्य धार्मिक प्रथाएं और आस्थाएं विकसित हो चुकी थीं और उनको धार्मिक आधार पर अनुकूल होने के कारण कतिपय वर्गों द्वारा मान्यता प्रदान की जा चुकी थी । यदि इन आस्थाओं को संपत्ति के शाश्वत रूप से विधिमान्य समर्पण के लिए पर्याप्त मानते हुए न्यायालयों द्वारा बिना वास्तविक या परिकल्पित सार्वजनिक लाभ के विचार के स्वीकार किया जाता है, तो कम से कम यह दर्शित किया जाना चाहिए कि उन आस्थाओं को व्यापक रूप से मान्यता प्राप्त हो चुकी है और वे आस्थाएं लोगों के सारभूत और वृहत वर्ग की धार्मिक प्रथाओं को गठित करती हैं । यह एक ऐसा प्रश्न है जो इस मामले में न्यायालय द्वारा प्रत्यक्ष रूप से विनिश्चय के प्रयोजनार्थ उद्भूत नहीं हुआ है । किंतु यह नहीं कहा जा सकता कि किसी संपत्ति के स्थाई रूप से विधिमान्य निपटारे के प्रयोजनार्थ एक या एक से अधिक व्यक्तियों की आस्था पर्याप्त होती है । <u>धार्मिक भावना के उत्पन्न हो जाने के फलस्वरूप आस्था द्वारा विनिर्धारित धार्मिक प्रयोजनों के प्रमुखों को यह अनुज्ञा प्रदान की जा सकती कि वे उन प्रयोजनों का लोकनीति और आधुनिक समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप निरंतर रूप से विस्तार करें ।</u>"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

उपरोक्त विनिश्चय में इस प्रश्न पर विचार किया गया है कि क्या बड़ी संख्या में हिंदुओं की किसी सारभूत और बड़े पैमाने पर अभिभावी प्रथा को धार्मिक या धर्मार्थ प्रथा के रूप में मान्यता प्रदान किया जाना अपेक्षित होगा । इस मामले में न्यायालय ने अभिव्यक्त रूप से पुन: मताभिव्यक्ति की कि इस प्रश्न का उत्तर दिया जाना आवश्यक नहीं है चूंकि कुछ इक्के-दुक्के लोगों द्वारा किसी गुंबद के पूजन की प्रथा को लोकनीति के आधार पर अमान्य किया जाना पर्याप्त होगा । यह विनिश्चय इस प्रश्न पर विचार नहीं करता कि किसी न्यायालय को किसी मूर्ति को या किसी भूमि को विधिक व्यक्तित्व कब प्रदान करना चाहिए । किसी विशिष्ट प्रथा को 'धार्मिक' या 'धर्मार्थ' प्रथा के रूप में उस धर्म के बड़ी संख्या में श्रद्धालुओं द्वारा अंगीकृत किए जाने के पैमाने पर निर्भर रहते हुए न्यायालय द्वारा मान्यता प्रदान की जा

सकती है या नहीं, इस आधार पर किसी विधिक व्यक्ति की संकल्पना के समानांतर कोई ऐसी व्यवस्था स्थापित नहीं की जा सकती, जो विधि के सर्वथा भिन्न क्षेत्र में क्रियान्वित होती हो । यह विनिश्चय इस दलील का समर्थन नहीं करता कि किसी धार्मिक स्थल की धार्मिक प्रकृति के बाबत व्यापक रूप से अभिभावी आस्था उस स्थल को विधिक व्यक्तित्व प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ प्राप्त होती है । अंततः श्री पारासरन ने **सपनेश्वर पूजापंडा** बनाम **रत्नाकर महापात्रा** (उपरोक्त) और **श्री आदि विशेश्वर आफ काशी विश्वनाथ टेम्पल** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** (उपरोक्त) वालों मामलों में दिए गए दोनों विनिश्चयों का अवलंब यह दलील दिए जाने के प्रयोजनार्थ लिया कि वाद संख्या 5 में द्वितीय प्रत्यर्थी 'स्वयं-भू' देवता हैं, जिनके विधिक व्यक्तित्व को मान्यता प्रदान की जा चुकी है । इन विनिश्चयों में मात्र यह उल्लेख किया गया है कि हिदुत्व में 'स्वयं-भू' देवता की संकल्पना को मान्यता प्रदान की गई है, जिसको वर्तमान विवाद में किसी भी पक्ष द्वारा विवादित नहीं किया गया है । किसी भी विनिश्चय से श्री पारासरन द्वारा दी गई दलील को समर्थन प्राप्त नहीं होता । वाद संख्या 5 में वादियों द्वारा दी गई दलीलों की सारभूत अंतर्वस्तु पर नीचे विचार किया गया है ।

184. श्री पारासरन ने निवेदन किया कि हिंदुत्व में विभिन्न देवता और मूर्तियां एकल अविभाज्य ईश्वर के मात्र पहलू हैं । अतः उन्होंने यह दलील दी कि किसी भी अविभाज्य ईश्वर का प्रकटन विधिक संरक्षण के योग्य होता है और वे विधिक व्यक्तित्व प्रदान किए जाने के योग्य होते हैं ।

185. **योगेन्द्र नाथ नास्कर** बनाम **सी. आई. टी., कलकत्ता** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने श्रद्धालुओं की इस संकल्पना के मध्य अंतर किया कि मूर्ति सर्वोच्च सत्ता का प्रकटीकरण होती है और विधि की दृष्टि में यह स्थिति कि विधिक व्यक्तित्व वसीयतकर्ता द्वारा व्यक्त किए गए उस पवित्र प्रयोजन के आधार पर प्रदान किया जाता है, जो विधिक संरक्षण का अधिकारी है । हिंदुत्व एक विस्तारवादी धर्म है, जो सर्वोच्च सत्ता के स्वरूप में देवत्व पर विश्वास करता है और जिस सर्वोच्च सत्ता के बारे में यह विश्वास किया जाता है कि वह सृजन की प्रत्येक पहलू में विद्यमान है । हिंदुत्व में ईश्वर की उपासना मात्र मंदिरों और मूर्तियों तक सीमित नहीं है बल्कि अनेक अवसरों पर यह उपासना

प्राकृतिक सृजनों, पशुओं तक भी विस्तारित हो जाती है और अनेक अवसरों पर दिन-प्रतिदिन की उन वस्तुओं तक भी विस्तारित हो जाती है, जो उपासनाकर्ता के जीवन में महत्व रखते हैं । धर्म की दृष्टि से सर्वोच्च सत्ता का प्रत्येक प्रकटन दैवीय प्रकृति का प्रकटन होता है और उपासना के योग्य होता है । तथापि, विधि की दृष्टि में सर्वोच्च सत्ता का प्रत्येक प्रकटन विधिक व्यक्ति नहीं होता । विधिक व्यक्तित्व एक अविष्कार है, जो विधिक आवश्यकता और न्यायनिर्णायक अस्तित्व की आवश्यकता के आधार पर उद्भूत होता है । विधिक व्यक्तित्व के प्रत्येक प्रदान, जो अभिव्यक्त रूप से निष्पादित समर्पण विलेख में अनुपस्थित हो, का निर्णय मामले के तथ्यों के आधार पर किया जाना चाहिए और यह अभिकथित किया जाना विधि की ठोस प्रतिपादना नहीं होगा कि सर्वोच्च सत्ता का प्रत्येक प्रकटन का परिणाम विधिक व्यक्ति का सृजन होगा ।

186. वर्तमान मामले में यह दलील दी गई है कि विवादित स्थल वाली भूमि स्वयमेव ही भगवान राम का प्रकटन है । इस संबंध में कतिपय मंदिरों, जिनमें मूर्तियां प्रतिष्ठापित नहीं हैं, की विद्यमानता का महत्वपूर्ण रूप से अवलंब दो विधिक प्रतिपादनाओं का उल्लेख किए जाने के प्रयोजनार्थ लिया गया, विशेष रूप से तमिलनाडु में चिदम्बरम मंदिर, प्रथमत: यह कि विधिक व्यक्तित्व रखने वाले हिंदू देवता किसी मूर्ति की स्थिति में भी विद्यमान हो सकते हैं और द्वितीय यह कि कोई विभूषित भूमि, जिसमें कोई विभेदकारी लक्षण उपस्थित न हो, स्वयं-भू देवता और परिणामस्वरूप विधि व्यक्तित्व का गठन कर सकती है । जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, वे मामले जिनका अवलंब श्री पारासरन द्वारा चिदम्बरम मंदिर और कल्याणसुन्देश्वर मंदिर के संबंध में लिया गया, विधिक व्यक्तित्व प्रदान किए जाने के बाबत निर्दिष्ट नहीं करते । तथापि, यह सत्य है कि किसी विधिक व्यक्तित्व की विद्यमानता के प्रयोजनार्थ पूर्वापेक्षा के रूप में कोई प्रतिमा अपेक्षित नहीं होती । ऐसे मामले जिनमें अभिव्यक्त रूप से निष्पादित किया गया समर्पण विलेख विद्यमान है, विधिक व्यक्तित्व समर्पणकर्ता द्वारा अभिव्यक्त पवित्र प्रयोजन में निहित होता है । प्रतिमा पवित्र प्रयोजन का तात्विक रूप से मूर्त रूप होती है और विधिक संबंधों का स्थल होती है । ऐसी भी घटनाएं घटित हुई हैं जिनमें प्रतिमा को जलमग्न कर दिया गया या यहां

तक कि उनका ध्वंस कर दिया गया । किंतु इन सब बातों के बावजूद भी यह अभिनिर्धारित किया गया कि उन प्रतिमाओं का विधिक व्यक्तित्व विद्यमान बना रहा । यदि कोई वसीयतकर्ता किसी धार्मिक प्रयोजन के लिए कोई समर्पण करना चाहता है किंतु जिस समय समर्पण किया गया, उस समय प्रतिमा विद्यमान नहीं थी या प्रतिमा के स्वरूप में देवत्व का प्रकटन नहीं था, किंतु वह प्रकटन किसी धार्मिक महत्व की किसी अन्य वस्तु के स्वरूप में था, तो विधिक व्यक्तित्व स्वयमेव समर्पण के पवित्र प्रयोजन में निहित बना रहेगा । तथापि, वर्तमान मामले में यह स्थिति नहीं है । वाद संख्या 5 में द्वितीय वादी के मामले में समर्पण का कोई अभिव्यक्त विलेख विद्यमान नहीं है ।

187. यह सत्य है कि मात्र इस कारणवश कि द्वितीय वादी एक प्रतिमा है और कोई समर्पण विलेख विद्यमान नहीं है, फिर भी उनको विधिक व्यक्तित्व प्रदान किए जाने पर कोई रोक नहीं है । मात्र इस तथ्य के कारण कि स्वयं-भू देवता का प्रकटन प्रकृति से हुआ है परंपरागत भाव में किसी प्रतिमा के वर्णन में उपयुक्त नहीं पाए जाते । न्यायालय देवत्व के ऐसे किसी तात्विक प्रकटन को विधिक व्यक्ति के रूप में मान्यता प्रदान करने से विवर्जित नहीं हैं । किसी तात्विक स्वरूप में प्रकटन परिभाषित किए जाने योग्य लक्षण है । तथापि, वर्तमान मामले में वाद संख्या 5 में वादियों की तरफ से प्रस्तुत किए गए उत्तर में दी गई दलीलें दोहरे दावों पर आधारित हैं – प्रथमत: यह कि स्वयं-भू देवता के मामले में विधिक व्यक्तित्व प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ तात्विक रूप से प्रकटन अपेक्षित नहीं होता । इस दृष्टि से इस आस्था और विश्वास के साथ उपासना का निर्वहन किया जाना कि उपस्थित संपत्ति देवत्व का प्रतिनिधित्व करती है, विधिक व्यक्तित्व प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ पर्याप्त है । द्वितीयत: यह कि अनुकल्प में यह उपधारणा करते हुए कि तात्विक प्रकटन स्वयंभू देवता के लिए पूर्वापेक्षा है, विवादित स्थल पर उपस्थित भूमि तात्विक प्रकटन का प्रतिनिधित्व करती है और यदि धार्मिक उपासना के निर्वहन की बात की जाए, तो विधिक व्यक्तित्व प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ कोई अन्य साक्ष्य अपेक्षित नहीं है । इस न्यायालय के समक्ष यह दलील दिए जाने के प्रयोजनार्थ चिदम्बरम मंदिर को सम्मिलित करते हुए ऐसे अनेक मंदिरों

के उदाहरण प्रस्तुत किए गए, जिनमें प्रतिमाएं विद्यमान नहीं हैं कि राम की प्रतिमा रूपी देवता का प्रकटन स्वयमेव भूमि के स्वरूप में हुआ था, जो इस मामले में विवादित भूमि है । चिदम्बरम मंदिर में निवासी देवता, जो भगवान शिव हैं, के रूप में कोई प्रतिमा विद्यमान नहीं है । इस मंदिर में बेदी के स्थान पर एक पर्दा विद्यमान है । उपासना के समय पर्दे को उठा दिया जाता है और जब बेदी स्थल प्रकट होता है तो वह स्थान रिक्त होता है । बेदी के स्थान पर रिक्त स्थान ही प्रार्थना की विषयवस्तु है और श्रद्धालू नियमित रूप से इस बेदी पर चढ़ावा अर्पित करते हैं । श्री पारासरन ने यह दर्शित किए जाने के प्रयोजनार्थ दलील दी कि किस प्रकार से रिक्त स्थान स्वयमेव ही, जहां पर कोई प्रतिमा या विभेदकारी लक्षण अनुपस्थित है, उपासना की विषयवस्तु है और विधिमान रूप से देवता गठित करता है जिसको विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया गया है ।

188. श्री पारासरन ने अपने उत्तर में दी गई दलीलों में विनिर्धारण के प्रयोजनार्थ तीन प्रश्न उठाए – प्रथमतः, क्या किसी स्वयं-भू देवता को भौतिक प्रकट की अनुपस्थिति में भी मान्यता प्रदान की जा सकती है; द्वितीयतः, क्या भूमि देवता का प्रकटन गठित करती है; और तृतीयतः, क्या अचल संपत्ति को विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया जा सकता है ।

189. स्वयं-भू देवता ऐसे ईश्वर का प्रकटन है, जो 'स्वयं प्रकट' या 'विद्यमान के रूप में खोज' है और जो परंपरागत प्रतिमा, जिसको हाथों से सृजित किया जाता है और प्राण प्रतिष्ठा के अनुष्ठान द्वारा प्रतिष्ठापित किया जाता है, के विपरीत होता है । 'स्वयं' शब्द का अर्थ है 'स्वतः' या 'अपने सामर्थ बल पर', 'भू' शब्द का अर्थ है 'जन्म लेना' । स्वयं-भू देवता वह देवता है जिसके प्रकटन बिना किसी मानवीय शिल्प कौशल के प्राकृतिक रूप से होता है । इन देवताओं के सामान्य उदाहरण हैं, जहां कोई वृक्ष किसी हिंदू देवता या देवी का आकार लेते हुए विकसित हो जाता है या जहां कोई नैसर्गिक रचना जैसेकि हिम (बर्फ) या चट्टान किसी मान्यता प्राप्त हिंदू देवता का स्वरूप ले लेती है ।

190. डा. धवन ने दलील दी कि स्वयं-भू देवता का कोई भी मामला अनिवार्य रूप से निम्नलिखित पर आधारित होगा :–

> "(i) किसी तात्विक स्वरूप में ईश्वर के प्रकटन का कोई साक्ष्य, जिसके अनुसरण में;

(ii) आस्था और विश्वास जिसका प्रतिनिधित्व किसी स्थावर संपत्ति का कोई विशिष्ट भाग देवत्व के रूप में करता है; और

(iii) कुछ संस्थागत उपासनाएं, जो प्रतिष्ठापन की पारंपरिक प्राण प्रतिष्ठा संस्कार की अनुपस्थिति में स्वयमेव धर्म द्वारा इस बाबत मान्यता गठित कर लेती हैं कि प्रकट होने वाला ही देवता है । इस बात को दृष्टि में रखते हुए किसी स्वयंभू देवता का भौतिक प्रकटन धार्मिक मान्यता के साथ जुड़े हुए आस्था और विश्वास पर आधारित होता है ।"

191. कोई स्वयं-भू देवता भौतिक स्वरूप में ईश्वर का अवतार होता है, जिसकी उपासना श्रद्धालुओं द्वारा बाद में की जाती है । किसी स्वयंभू देवता की मान्यता इस धारणा पर आधारित होती है कि ईश्वर सर्वत्र विद्यमान है वह किसी भी भौतिक स्वरूप में प्रकट हो सकता है । इस प्रकटन की उपासना देवत्व के अवतार के रूप में की जाती है । इन सभी मामलों में देवत्व का आरोपण देवता के भौतिक स्वरूप में प्रकटन पर आधारित होता है । निःसंदेह रूप से कोई देवता बिना किसी भौतिक प्रकटन के भी विद्यमान हो सकता है, इसके उदाहरण है सूर्य और वायु की उपासना । किंतु कोई स्वयंभू देवता देवत्व के भौतिक प्रकटन पर आधारित होता है, जिसके साथ आस्था और विश्वास संलग्न होते हैं ।

192. वर्तमान मामले में जो कठिनाई उत्पन्न हुई है वह यह है कि इस न्यायालय के समक्ष मान्यता की ईप्सा करने वाले स्वयं-भू देवता उस स्वरूप में नहीं हैं, जो सामान्यतया मानवरूपी हिंदू देवताओं के समूह से संबद्ध होता है । वाद संख्या 5 के वादियों ने विवादित भूमि को केंद्र बिंदु के रूप में निश्चित किए जाने की ईप्सा यह दलील देते हुए की है कि यह भूमि स्वयमेव देवतातुल्य है और इस भूमि पर श्रद्धालू न केवल भगवान राम की मूर्तियों की उपासना करते हैं बल्कि वे स्वयमेव भूमि की भी उपासना करते हैं । भूमि में निवासी देवता भगवान राम का भौतिक प्रकटन समाविष्ट नहीं होता । यदि श्रद्धालुओं में आस्था और विश्वास अनुपस्थित हो जाए तो भूमि में कोई भी ऐसे विलक्षण लक्षण नहीं होंगे, जिनको इस न्यायालय द्वारा विवादित स्थल पर ईश्वर के प्रकटन के साक्ष्य के रूप में मान्यता प्रदान की जा सके । यह सत्य है कि आस्था और विश्वास के मामलों में साक्ष्य की अनुपस्थिति का अर्थ

अनुपस्थिति का साक्ष्य नहीं होगा । तथापि, प्रकटन की उनुपस्थिति में भूमि को स्वयं-भू देवता के रूप में मान्यता प्रदान किया जाना उन पक्षों को यह दलील देने के लिए अनेकानेक अवसर प्रदान कर देगा कि एक सामान्य भूमि, जो धार्मिक महत्व की किसी घटना की साक्षी है और देवता के मानव रूप में अवतार के साथ संबद्ध है (उदाहरणार्थ विवाहस्थल या मृत्यु के पश्चात् ईश्वर के धाम को पलायन) । वास्तव में, भूमि के स्वरूप में स्वयं-भू देवता का प्रकटन है । यदि श्री पारासरन द्वारा दी गई दलील यह है कि भौतिक प्रकटीकरण को स्वीकार किया जाना अपेक्षित नहीं है, तो यह दावा भली-भांति किया जा सकता है कि धार्मिक महत्व का कोई भी क्षेत्र स्वयं-भू देवता होता है, जो विधिक व्यक्ति के रूप में मान्यता प्रदान किए जाने योग्य होता है । यह समस्या इस तथ्य के कारण भी जटिल हो गई है कि किसी धार्मिक स्थल पर किसी विशिष्ट देवता की उपासना और धार्मिक स्थल का महत्व रखने वाली भूमि समस्त प्रयोजनों और आशयों को दृष्टि में रखते हुए अविभेद्य होती है । इसलिए किसी स्वयंभू देवता को मान्यता प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ ठोस न्यायशास्त्रीय आधार प्रदान किए जाने के लिए प्रकटन महत्वपूर्ण होता है । प्रकटन की अनुपस्थिति होने पर, जो भूमि को अन्य संपत्ति से विभेद करती है, तो ऐसी भूमि को विधिक व्यक्तित्व प्रदान नहीं किया जा सकता ।

193. यह तथ्य सारगर्भित है कि भूमि के कतिपय प्रकरणों में कतिपय विलक्षण कुछ विशिष्ट विशेषताएं समाहित होती हैं । उदाहरण के लिए यह दावा किया जा सकता है कि समुद्र के किनारे या भूमि पर उगी हुई फसल के आकार की कतिपय पद्धतियां देवत्व के प्रकटन का प्रतिनिधित्व करती हैं । ऐसे मामलों में प्रकटन भूमि से अपृथकनीय होता है और उसके साथ संलग्न होता है । यहां पर एक स्वतंत्र प्रश्न उद्भूत होता है, जो यह है कि क्या भूमि देवता का भौतिक प्रकटन गठित करती है । यदि कोई न्यायालय किसी भूमि को इस कारणवश कि वह भूमि भी अचल संपत्ति के सिद्धांतों द्वारा शासित है, देवता के प्रकटन के रूप में मान्यता प्रदान करता है, तो न्यायालय को उन परिणामों का अन्वेषण करने की आवश्यकता उत्पन्न होगी, जो उद्भूत हुए हैं । न्यायालय को ऐसा करते हुए अचल संपत्ति पर विधिक अधिक्षेत्र के साथ न्यायिक

व्यक्तित्व के विधिक अधिक्षेत्र की अनुकूलता का विश्लेषण करना चाहिए । अब यह आवश्यक है कि इस पर विचार किया जाए ।

देवता में निहित संपत्ति और संपत्ति के रूप में देवता

194. (रोमन विधि के अनुसार) किसी संस्थान या (हिंदू विधि के अनुसार) विधिक व्यक्ति के रूप में किसी देवता में निहित संपत्तियों के मध्य महत्वपूर्ण विभेद होता है और इन मामलों में संपत्ति विधिक व्यक्ति होती है । जिन मामलों में संपत्ति किसी पवित्र प्रयोजन के लिए गठित किसी संस्थान में निहित होती है, तो वह संपत्ति अचल संपत्ति के रूप में विशिष्ट गुण धारण करती है । ऐसा कहा जाना उन मामलों में भी सत्य होता है, जिनमें संपत्ति आदर्श भाव में देवता में निहित होती है । विधिक व्यक्तित्व प्रदान किए जाने का प्रयोजन दोनों ही बातों को सुनिश्चित करना होता है, विधिक संबंधों का केंद्र और साथ ही श्रद्धालुओं के लाभार्थ हित को संरक्षण । इससे संपत्ति का स्वरूप परिवर्तित नहीं होता, जो विधिक व्यक्ति में निहित होता है । यह उस विधि की रूपरेखा के अध्यधीन बना रहता है, जो उस संपत्ति और दायित्वों के बाबत अधिकारों और हितों को शासित करने वाले समस्त संबंधों को परिभाषित करती है, जो संपत्ति से उद्भूत होने वाले विधिक संबंधों के साथ संलग्न होते हैं ।

195. इस विभेद, जो अचल संपत्ति के लक्षणों पर प्रकाश डालता है, को **मास्क, मस्जिद शहीदगंज** बनाम **शिरोमणी गुरुद्वारा कमिटी, अमृतसर**[1] वाले मामले में प्रिवी कौंसिल द्वारा स्पष्ट किया गया । उस मामले में **फलक वेग खान** नामक एक महिला द्वारा वर्ष 1927 में एक मस्जिद समर्पित की गई थी । समर्पण विलेख द्वारा शेख दीन मुहम्मद और उसके उत्तराधिकारी इस मस्जिद के मुतवल्ली नियुक्त किए गए थे । तथापि, वर्ष 1762 से इस मस्जिद का भवन और उसके साथ संलग्न बरामदा, कुंआ और भूमि सिखों के अधिभोग और कब्जे में आ गए । मस्जिद के साथ संलग्न भूमि पर एक सिख धार्मिक स्थल बन गया । वर्ष 1849 में ब्रिटिश सरकार द्वारा इस क्षेत्र को अपने साम्राज्य में मिला लिए जाने के समय सिख मस्जिद और उसके साथ संलग्न भूमि दोनों के कब्जे में थे ।

---

[1] ए. आई. आर. 1940 पी. सी. 116.

196. तत्पश्चात्, मस्जिद के भवन को 'सिख अभिरक्षकों की सहमति के द्वारा' ढहा दिया गया । वर्ष 1935 में शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जो विवादित संपत्ति के कब्जे में थी, के विरुद्ध घोषणा की ईप्सा करते हुए एक वाद इस बाबत फाइल किया गया कि ढहाया गया भवन एक मस्जिद थी, जिसमें वादियों और इस्लाम के समस्त अनुयायियों को उपासना का अधिकार था और साथ ही भवन को पुनर्निर्मित किए जाने के प्रयोजनार्थ अस्थाई व्यादेश की भी ईप्सा की गई । 18 वादियों में से एक वादी स्वयं मस्जिद थी, जिसमें मस्जिद का स्थल और भवन दोनों सम्मिलित थे । प्रिवी कौंसिल ने इस दलील का विश्लेषण किया कि क्या मस्जिद और उसके साथ संलग्न संपत्तियां विधिक व्यक्ति हैं । इस दलील को अस्वीकृत करते हुए न्यायमूर्ति जॉर्ज रेंकिन ने अभिनिर्धारित किया :–

> "यह दलील कि किसी मस्जिद की भूमि और भवन संपत्ति बिल्कुल भी नहीं होते क्योंकि यदि उनको 'विधिक व्यक्ति' माना गया तो इससे अनेक भ्रांतियां अंतर्वलित होंगी । इसको अनेक विनिश्चयों, जिनके द्वारा किसी उपासनाकर्ता या मुतवल्ली को यह अनुज्ञा प्रदान की गई कि वे किसी अतिचारी के निष्कासन के द्वारा वक्फ़ के प्रयोजनों के लिए भूमि और भवन का कब्जा प्राप्त करने के बाबत वाद फाइल कर सकें, में पूर्णतया असंगत पाया गया है ... किसी भवन, जिसको मुस्लिमों के लिए उपासना स्थल के रूप में समर्पित किया गया है, के बाबत विधि की स्थिति के मध्य कुछ समानता होनी चाहिए और न्यायाधीश महोदय के लिए हिंदू धर्म के अलग-अलग देवता कुछ कौतूहल का विषय है ... भारत में यह प्रक्रिया हिंदू धर्म के बहुदेववाद और अन्य लक्षणों पर आवश्यक रूप से विचार करती है और उसके लिए आवश्यक सिद्धांत के रूप में हिंदू विधि के कतिपय सिद्धांतों को मान्यता प्रदान करती है, अर्थात् मूर्ति भी संपत्ति की स्वामी हो सकती है ...।
>
> (अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

ऐसा प्रतीत होता है कि किसी मस्जिद को 'विधिक व्यक्ति' के रूप में मान्यता प्रदान करने वाले विनिश्चय केवल पंजाब तक सीमित हैं – [153 पी. आर. 1984] ; शंकर दास **बनाम** सईद

अहमद [(1884) 153 पी. आर. 1884 = 59 पी. आर. 1914]; मौला बक्श **बनाम** हफीजुद्दीन [(1926) 13 ए. आई. आर. लाहौर 372 = ए. आई. आर. 1926 लाहौर 327] । इनमें से किसी भी मामले में मस्जिद वाद का पक्ष नहीं थी और किसी भी मामले में विनिश्चयों के प्रयोजनार्थ मस्जिद को, सिवाय अंतिम मामले के, मात्र अवास्तविक व्यक्तित्व प्रदान किया गया । किंतु जहां तक इन मामलों का संबंध है, ये मामले किसी संस्था के रूप में मस्जिद को अवास्तविक व्यक्ति के रूप में मान्यता का समर्थन करते हैं । जैसाकि विद्वान् मुख्य न्यायमूर्ति ने वर्तमान मामले में स्पष्ट किया है, यह मामला किसी भवन को व्यक्तित्व प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ अत्यंत भिन्न मामला है, जिसके आधार पर उसको अचल संपत्ति के रूप में उसके स्वरूप से वंचित किया जा सके । किंतु जहां तक इन मामलों का संबंध है, ये मामले किसी मस्जिद के अवास्तविक व्यक्तित्व को एक संस्था के रूप में मान्यता का समर्थन करते हैं – प्रकटत: किसी मतिहीनता को बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत किए जाने के द्वारा । जैसाकि वर्तमान मामले में विद्वान् न्यायमूर्ति द्वारा स्पष्ट किया गया, यह किसी भवन को व्यक्तित्व प्रदान किए जाने, जिससे उस भवन को अचल संपत्ति के रूप में उसकी प्रकृति से वंचित किया जा सके, से सर्वथा भिन्न है ।"

197. प्रिवी कौंसिल ने उल्लेख किया कि यदि मस्जिद विधिक व्यक्ति है, तो इसका अर्थ यह होगा कि उसके बाबत परिसीमा लागू नहीं होती और 'यह कोई संपत्ति नहीं बल्कि संपत्ति की स्वामी है' । प्रिवी कौंसिल द्वारा जिस तर्कणा पर विचार किया गया, उसको रेखांकित करते हुए यह कहा जा सकता है कि किसी अचल संपत्ति को विधिक व्यक्तित्व प्रदान किए जाने का अर्थ यह होगा कि वह संपत्ति अचल संपत्ति के रूप में अपने स्वरूप को खो देगी । अचल संपत्ति अपनी आत्यंतिक प्रकृति के द्वारा अपने विरुद्ध परस्पर विरोधी सांपत्तिक दावे ग्रहण करती है । अचल संपत्ति को विभाजित किया जा सकता है । तथापि, स्वयमेव भूमि को विधिक व्यक्ति के रूप में मान्यता प्रदान किए जाने से संभवत: इन अनिवार्य लक्षणों के नष्ट हो जाने का मार्ग प्रशस्त हो जाएगा । जिन मामलों में विधिक व्यक्तित्व को भौतिक संपत्तियों के मामलों में मान्यता

प्रदान की जाती है, जैसेकि देवता के रूप में, तो इससे उस बृहत्तर हित की पूर्ति होती है जिसके लिए विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया गया – दानदाता द्वारा उल्लिखित पवित्र प्रयोजन के निष्पादन और संरक्षण को सुनिश्चित किए जाने और श्रद्धालुओं के लाभार्थ हित को अंतिम रूप से संरक्षण प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ । तथापि, अचल संपत्तियों को विधिक व्यक्तित्व प्रदान किए जाने से ऐसे परिणाम उत्पन्न होंगे, जिनका उन सीमित प्रयोजनों के साथ आधारभूत रूप से कोई अंतर्बंधन नहीं होगा, जिनके लिए विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया गया था । इससे वह अचल संपत्ति उसी प्रजाति की अन्य समस्त अचल संपत्तियों से पूर्णतया अलग-थलग पड़ जाती है, जिसको विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया गया । इससे यह दावा उद्भूत होगा कि वह विधिक व्यवस्था, जो किसी पश्चात्वर्ती (सामान्य अचल संपत्ति), जिसको स्वयमेव में विधिक व्यक्ति के रूप में मान्यता प्रदान की गई है, पर लागू होती है, उसी वर्ग की अन्य अचल संपत्तियों पर लागू नहीं होगी । यदि प्रतिकूल कब्जे और परिसीमा के सिद्धांतों को दलीलों के प्रयोजनार्थ स्वीकार कर लिया जाता है, तो भी वे सिद्धांत विधिक व्यक्ति के रूप में किसी भूमि, जो 'कब्जे' के योग्य नहीं है, के संबंध में लागू नहीं होंगे । बंदोबस्तियों के संदर्भ में विधिक व्यक्तित्व प्रदान किए जाने का प्रयोजन इस बात को सुनिश्चित करना था कि बंदोबस्ती वादी संपत्ति को विधिक संरक्षण सुनिश्चित हो सके और इसका प्रयोजन यह नहीं था कि उस संपत्ति को विधि की पहुंच के बाहर रखते हुए विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया जाए । भूमि को विधिक व्यक्ति की हैसियत प्रदान किया जाना आधारी तौर पर अचल संपत्ति के रूप में उसके लक्षणों को परिवर्तित कर देता है, यह एक ऐसा भीषण परिणाम होता है, जिसके विरुद्ध न्यायालय को सतर्क रहना चाहिए । साथ ही यह इस बात को अनुध्यात किए जाने के प्रयोजनार्थ कोई विधिक रक्षोपाए नहीं है कि न्यायालय ऐसे प्रत्येक मामले जिसमें किसी विशिष्ट अचल संपत्ति को विधिक हैसियत प्रदान कर दी गई है, के गुणागुण के आधार पर इस बात का निर्णय करेगा । इस सिद्धांत को लागू किए जाने के प्रयोजनार्थ किसी उद्देश्यपरक स्तरमान की अनुपस्थिति में रूपरेखा निर्धारित किया जाना अंतर्निहित रूप से विषयपरक मामला होगा, जो न्यायिक प्रक्रिया की प्रभाविकता को प्रभावित करेगा ।

198. हिंदू समुदाय के समस्त पक्षों को सम्मिलित करते हुए वर्तमान विवाद के समस्त पक्षों द्वारा प्रश्नगत भूमि को वर्ष 1989 तक अचल संपत्ति माना गया है । विवादित संपत्ति के संबंध में मुकदमेबाजी वर्ष 1885 से चल रही है और किसी भी समयबिंदु पर, जब तक वर्ष 1989 का वाद संख्या 5 फाइल नहीं किया गया इस बाबत कोई अभिवाक् नहीं दिया गया कि प्रश्नगत भूमि किसी विधिक व्यक्तित्व के कब्जे में रही है । उन कारणों के अलावा, जिनको ऊपर रेखांकित किया गया है, इस न्यायालय को यह अधिकार नहीं है कि वर्तमान में इस संपत्ति पर भिन्न दृष्टिकोण रखते हुए विचार करे और वह भी 1989 के वाद संख्या 5 में वादियों द्वारा किए गए मात्र इस विलक्षण अभिवाक् के आधार पर ।

परंपरागत रूपरेखा के आधार पर स्वत्व से संबंधित दावों पर विचार किया जाना

199. वर्तमान मामले से संबंधित तथ्य धार्मिक उपासना स्थल पर श्रद्धालुओं के आवागमन के प्रश्नों और इस प्रश्न के बाबत कि भूमि का स्वत्व किसका है, से संबंधित हैं । श्रद्धालुओं के धार्मिक उपासनास्थल पर आवागमन के प्रश्न को इस न्यायालय द्वारा कृत्रिम विधिक व्यक्ति के सृजन के बिना विभिन्न स्वरूपों में संरक्षण प्रदान किया जा सकता है । कुप्रबंधन के विरुद्ध संरक्षण का प्रश्न स्पष्टत: इस बात के अधिक्षेत्र के अंतर्गत आता है कि किसको शिबायत के रूप में मान्यता प्रदान की जानी चाहिए और इस प्रश्न पर वर्तमान निर्णय के अनुक्रम के दौरान अन्य स्थानों पर भी विचार किया गया है । सामान्यत: यह न्यायालय 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के अंतर्गत आवेदन प्रस्तुत किए जाने पर इस प्रकार की स्थितियों पर विचार करने के लिए सशक्त है । स्वत्व के प्रश्न का न्यायनिर्णयन अचल संपत्ति के संबंध में लागू होने वाली विद्यमान विधिक व्यवस्था पर विचार करते हुए किया जा सकता है । इस बाबत आवश्यकता या सुविधा का कोई कारण नहीं है, जो न्यायालय को वाद संख्या 5 में वादियों द्वारा दी गई इस विलक्षण दलील पर विचार करने के लिए विवश कर सकता हो कि विवादित भूमि को विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया जाना चाहिए ।

200. विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया जाना एक विधिक आविष्कार है, जो न्यायालयों द्वारा ऐसी परिस्थितियों में लागू किया जाता है

जिनमें विद्यमान विधि में कतिपय खामियां होती हैं या विधिक व्यक्तित्व प्रदान किए जाने के कारण न्यायनिर्णयन की सुविधा में बढ़ोतरी होती है । वर्तमान मामले में विद्यमान विधि श्रद्धालुओं के हितों को संरक्षण प्रदान करने के लिए और स्वयमेव भूमि को विधिक व्यक्ति के रूप में मान्यता प्रदान किए बिना कुप्रबंधन के विरुद्ध कार्रवाई सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त रूप से सुसज्जित है । ऐसे मामलों में, जिनमें विधि श्रद्धालुओं के हितों को संरक्षण प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ पर्याप्त रूप से सक्षम है और भूमि को विधिक व्यक्तित्व प्रदान किए बिना इस बाबत सुनिश्चित करने के लिए सक्षम है कि धार्मिक स्थलों का प्रबंधन जवाबदेह हो, यह आवश्यक नहीं है कि इस बाबत कोई ऐसी विधिक अवधारणा सृजित की जाए, जो भविष्य में अनाश्यित परिणाम रखने वाली हो । अत: इस दलील में कोई गुणागुण नहीं है कि मात्र आस्था और विश्वास के आधार पर और मात्र आस्था और विश्वास के संरक्षण के प्रयोजनार्थ द्वितीय वादी को विधिक व्यक्तित्व प्रदान किए जाने की आवश्यकता उत्पन्न हो गई है । इसके विपरीत इस दलील को अपनाए जाने के सारभूत जोखिम विद्यमान है । किसी धर्म के किसी एक वर्ग द्वारा यह दलील दी जा सकती है कि भूमि का कोई विस्तृत भूखंड जन्मस्थान है, विवाह का स्थान है, या कोई ऐसा स्थान है जहां से श्रद्धालुओं की आस्था और विश्वास के आधार पर किसी देवता ने मानव के रूप में अवतार लेने के पश्चात् स्वार्गारोहण के लिए प्रस्थान किया । भौतिक संपत्ति किसी देवता के मानव रूप में अवतार के साथ असंख्य घटनाओं के साथ सहबद्ध हो सकती है, जो श्रद्धालुओं की आस्था और विश्वास में महत्वपूर्ण स्थान रखते हों । न्यायालय कहां से किसी संपत्ति को विधिक व्यक्तित्व प्रदान किए जाने को आस्था के महत्व के निर्धारण के प्रयोजनार्थ रेखांकित करेंगी ? किसी उद्देश्यपूर्ण मानदंड की अनुपस्थिति में इस कार्य को आत्मचेतना के आधार पर करना होगा । वाद संख्या 5 में वादियों द्वारा दी गई दलीलों को मंजूर किए जाने का परिणाम समस्त दावांतर्गत भूमियों को विधिक व्यक्तित्व प्रदान किए जाने वाला हो सकता है । भूमि को विधिक व्यक्तित्व प्रदान किए जाने के कारण उन सद्भाविक मुकदमेबाजों के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है, जो भूमि को विधिक व्यक्तित्व प्रदान किए जाने का दावा करने वाले श्रद्धालुओं की आस्था के न हों –

जो उस विश्वास को न मानने वाले हों और फिर भी भूमि को विधिक व्यक्तित्व प्रदान किए जाने के कारण उनके स्वत्व समाप्त हो रहे हों । पुन: श्रद्धालुओं की आस्था और विश्वास के आधार पर अचल संपत्ति को विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया जाता है, जो आधारी रूप से आत्मचेतना के आधार पर किया जाता है और जिसको इस न्यायालय के समक्ष चुनौती नहीं दी जा सकती ।

201. वह उद्देश्य जिसके अंतर्गत विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया जाता है, को धार्मिक आस्था और विश्वास के आधार पर काठ के किसी विशालकाय घोड़े के रूप में अंतर्वलित नहीं किया जा सकता, जो संपत्ति के ऊपर समस्त परस्पर विरोधी सांपत्तिक दावों के अस्तित्व को समाप्त कर देता है और साथ ही स्वयमेव संपत्ति को ही अचल संपत्ति के आवश्यक लक्षण से पृथक् कर देता है । यदि वाद संख्या 5 में वादियों की तरफ से दी गई दलील को स्वीकार कर लिया जाए, तो इसके परिणामस्वरूप विधि की ऐसी स्थिति उत्पन्न होगी जिसके अंतर्गत 'आत्यंतिक स्वत्व' के दावों को श्रद्धालुओं की मात्र आस्था और विश्वास के आधार पर मान्य ठहराया जा सकता है । भौतिक संपत्ति पर विधिक व्यक्तित्व प्रदान किए जाने के परिणामस्वरूप संपत्ति न केवल परस्पर विरोधी स्वत्व संबंधी दावों से मुक्त हो जाएगी बल्कि इसके कारण बड़ी संख्या में विधियां, जो न्यायालयों के लिए सिविल वादों में महत्वपूर्ण प्रश्नों जैसेकि परिसीमा, स्वामित्व, कब्जा और विभाजन के अर्थपूर्ण न्यायनिर्णयन के प्रयोजनार्थ आवश्यक हैं, पूर्णतया अर्थहीन हो जाएंगे । वाद संख्या 5 में वादियों की तरफ से दी गई दलील के आधार पर अधिक से अधिक किसी ऐसे दावे को मान्य ठहराया जा सकता है कि कोई विनिर्दिष्ट स्थल श्रद्धालुओं के लिए धार्मिक महत्व का स्थल है । तथापि, इस दलील को विधि की दृष्टि में सांपत्तिक दावों को मान्य ठहराए जाने या स्वयमेव भूमि को विधिक व्यक्तित्व प्रदान किए जाने के द्वारा उस भूमि से संबद्ध अन्य लोगों के सांपत्तिक या स्वत्व आधारित दावों से भूमि को मुक्त किए जाने के प्रयोजनार्थ विस्तारित नहीं किया जा सकता ।

संवैधानिक मूल्यों की प्रतिबद्धता

202. मामले के इस पहलू पर एक अंतिम मताभिव्यक्ति भी की जानी चाहिए, जो अत्यधिक महत्व की है । वाद संख्या 5 में वादियों की

तरफ से दी गई दलील को अस्वीकृत कर दिए जाने के कारण पंथनिरपेक्षता की हमारी संवैधानिक प्रतिबद्धता के केंद्र पर आघात हुआ है । उपासना का तरीका, जिसके आधार पर कोई सांपत्तिक दावा मान्य ठहराया जा सकता है, किसी विशिष्ट क्षेत्र से संबद्ध होता है । धार्मिक बंदोबस्तियों के आधार पर मूर्तियों को विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया जाना एक विधिक आविष्कार है, जो केवल हिंदू समुदाय की प्रथाओं पर लागू होता है । परिक्रमा किया जाना उपासना का एक तरीका है, जो अधिकांशत: हिंदुओं तक सीमित है । इस तथ्य पर विचार न किया जाना कि वाद संख्या 5 में वादियों द्वारा दी गई दलील हिंदू बंदोबस्तियों पर लागू होने वाली विधि का विलक्षण विस्तार है, एक महत्वपूर्ण मामला है, जिस पर हमारे द्वारा विचार किया जाना अपेक्षित है ।

203. नि:संदेह रूप से धार्मिक विविधता की यह अपेक्षा होती है कि उपासना किए जाने और धार्मिक अनुष्ठानों का निर्वहन किए जाने के विविध तरीकों को संरक्षण प्रदान किया जाए । तथापि, उपासना करने का कोई तरीका जो किसी एक धर्म में विलक्षण हो, के परिणामस्वरूप सिविल के सांपत्तिक दावों के न्यायनिर्णयन के प्रयोजनार्थ किसी एक धर्म के पक्षों को अन्य धर्म के पक्षों के अधिकारों को समाप्त करते हुए आत्यंतिक स्वत्व प्रदान करने वाला हो, हमारे संविधान के अंतर्गत मान्य नहीं ठहराया जा सकता । यह उस विधि को, जो अंतत: निष्पक्ष रूप से न्यायनिर्णयन करने वाली हो और किसी पक्ष को उसके विधिक दावों के संबंध में किसी विशिष्ट मामले के गुणागुण के आधार पर नहीं बल्कि उस धर्म की संरचना के आधार पर लाभ प्रदान करने वाली हो, जिससे वे संबंधित हों, को निरर्थक बना देगा । वाद संख्या 5 में वादियों की तरफ से दी गई दलील मंजूर की जाती है, क्योंकि इस आधार पर मात्र एक धर्म द्वारा की जाने वाली उपासना पद्धति के आधार पर किसी विवादित संपत्ति पर समस्त सांपत्तिक दावों को समाप्त करने की शक्ति प्रदान कर दी जाएगी ।

204. यह सत्य है कि व्यक्तियों और कोई बात, जिसको वे दैवीय बात समझते हैं, गहराईपूर्वक आंतरिक रूप से दैवीय बात होती है । यह बात व्यक्तिगत क्षेत्र के अधिक्षेत्र के अंतर्गत आती जिसमें किसी अन्य व्यक्ति को दखल नहीं देना चाहिए । इसी कारणवश संविधान समस्त

नागरिकों को समानतापूर्वक अपने धर्म को मानने, उसके अनुरूप आचरण करने और उसका प्रचार-प्रसार करने की स्वतंत्रता को संरक्षण प्रदान करता है । बहुधा मनुष्य को उपासना करके शांति की अनुभूति होती है । किंतु उपासना को किसी सुव्यवस्थित सूत्र में सीमित नहीं किया जा सकता । यह भारतीय समाज के सामाजिक तानेबाने में धर्म की गहरी पैठ के कारण है कि धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार को आत्यंतिक अधिकार बना दिया गया । इस न्यायालय के न्यायशास्त्र में धर्म और पंथनिरपेक्षता के मध्य एक रेखा खींचने का प्रयास किया गया है । यदि संवैधानिक मूल्यों की प्रतिबद्धता को मान्य ठहराया जाना है, तो निजी संपत्ति के संबंध में सिविल दावों का न्यायनिर्णयन पंथनिरपेक्षता के अधिक्षेत्र के अंतर्गत रहना चाहिए । संविधान विगत चार दशकों के दौरान अनेकों बार संशोधित किया गया है और उसके पंथनिरपेक्षता तानेबाने के विनिर्दिष्ट संदर्भ को संविधान में सम्मिलित किया गया है । इस संविधान के केंद्र में जिस बात पर जोर दिया गया है, वह वही बात है जिसको संविधान ने सदैव सम्मान प्रदान किया है और स्वीकार किया है – जो समस्त आस्थाओं की समानता है । पंथनिरपेक्षता को प्रत्येक व्यक्ति को धार्मिक स्वतंत्रता के प्रयोग के प्रति बेखबर रहने के द्वारा उसी प्रकार से भुलाया नहीं जा सकता जैसेकि समय की रेत पर लिखी हुई इबादतें समय के व्यतीत हो जाने के कारण मिट जाती है ।

205. यह ऊपर दर्शित समस्त कारणोंवश है कि विधि को आज भी अचल संपत्ति के बाबत विधिक व्यक्तित्व प्रदान किए जाने के प्रश्न को स्वीकार करना बाकी है । धार्मिकता हृदय और मस्तिष्क, दोनों पर हावी हो जाती है । न्यायालय किसी ऐसी स्थिति को स्वीकार नहीं कर सकते, जो न्यायिक पृथक्करण और साथ ही संपूर्ण विधिक प्राणाली पर प्राथमिकता प्रदान किए जाने के आधार पर किसी एक धर्म की आस्था और विश्वास को प्राथमिकता प्रदान करती हो । हमारे जैसे देश में शहीदगंज से अयोध्या तक, जहां धार्मिक समुदायों द्वारा संपत्ति पर परस्पर विरोधी दावे अपरिहार्य होते हैं । हमारे न्यायालय स्वत्व, जो दृढ़तापूर्वक पंथनिरपेक्षता के अधिक्षेत्र के अंतर्गत और धर्म के परिक्षेत्र के बाहर स्थित हो, के प्रश्न को किसी ऐसे प्रश्न में परिवर्तित नहीं कर सकते जिसके बाबत किसी समुदाय की आस्था अत्यधिक दृढ़ हो ।

अत: समस्त तथ्यों, जिनको ऊपर रेखांकित किया गया है, पर विचारोपरांत यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि वाद संख्या 5 में द्वितीय वादी 'स्थान श्रीराम जन्मभूमि' विधिक व्यक्ति नहीं है ।

ट. वादों का विश्लेषण

206. गोपाल सिंह विशारद द्वारा फाइल किया गया वाद संख्या 1 आवश्यक रूप से ऐसा वाद है, जिसको एक उपासक द्वारा जन्मभूमि पर भगवान राम की उपासना के उसके अधिकार के प्रवर्तन के प्रयोजनार्थ फाइल किया गया है । निर्मोही अखाड़ा द्वारा फाइल किया गया वाद संख्या 3 जन्मभूमि मंदिर का प्रबंधन और भार उनको सौंपे जाने के लिए फाइल किया गया है । सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड द्वारा फाइल किया गया वाद संख्या 4 घोषणात्मक अनुतोष प्राप्त करने के लिए फाइल किया गया है कि बाबरी मस्जिद और उसके चारों तरफ स्थित कब्रिस्तान को सम्मिलित करते हुए विवादित स्थल संपूर्णत एक सार्वजनिक मस्जिद है और इस वाद में कब्जे की डिक्री ईप्सित है । भगवान राम की मूर्ति (देवता) और जन्मस्थान (जिन दोनों को न्यायिक व्यक्ति कहा गया है) द्वारा वादमित्र के माध्यम से फाइल किया गया वाद संख्या 5 में इस बाबत घोषणात्मक अनुतोष ईप्सित है कि संपूर्ण परिसर, जिसमें वादपत्र के संलग्नक 1, 2 और 3 में वर्णित स्थान सम्मिलित हैं, राम जन्मभूमि का गठन करते हैं और इस वाद में विद्यमान भवन के ध्वंस के पश्चात् नए मंदिर के निर्माण में मध्यक्षेप के विरुद्ध व्यादेश की ईप्सा भी की गई है ।

अब इस निर्णय में इन वादों में ईप्सित दावों का विश्लेषण और न्यायनिर्णयन किया जाएगा ।

ठ. वाद संख्या 1 – गोपाल सिंह विशारद, मृतक मार्फत विधिक उत्तराधिकारी राजेन्द्र सिंह बनाम **जहूर अहमद और अन्य**

ठ.1 अभिवचन

207. तारीख 16 जनवरी, 1950 को गोपाल सिंह विशारद द्वारा फैज़ाबाद के सिविल न्यायाधीश के समक्ष एक वाद फाइल किया गया था जिसने स्वयं को एक हिंदू श्रद्धालु के रूप में वर्णित किया था । वह अयोध्या का निवासी है और 'सनातन धर्म' का उपासक है । उसकी शिकायत यह थी कि उसको सरकार के अधिकारियों द्वारा पूजन के

प्रयोजनार्थ भवन के भीतरी बरामदे में प्रवेश से रोका जा रहा है । वादी का दावा है कि उसको भगवान राम की मूर्ति (देवता) के पूजन का अधिकार है । उसने निम्नलिखित अनुतोषों की ईप्सा की थी :–

(i) बिना किसी मध्यक्षेप के जन्मभूमि मंदिर में 'धर्म और प्रथा के अनुसार' भगवान राम के पूजन के उसके अधिकार और दर्शन की ईप्सा के बाबत घोषणा ; और

(ii) उसके स्थान से, जहां देवता की मूर्तियों और अन्य मूर्तियों को स्थापित किया गया था, को हटाने; उस मार्ग को बंद करने, जो मूर्तियों की तरफ जाता है; या पूजन और दर्शन में मध्यक्षेप करने से प्रतिवादी संख्या 1 से 10 को निषिद्ध किए जाने के प्रयोजनार्थ स्थाई और शाश्वत व्यादेश ।

अभिकथित रूप से तारीख 14 जनवरी, 1950 को वाद संख्या 1 में वादकारण तब उद्भूत हुआ, जब सरकारी कर्मचारियों ने विधिविरुद्ध तरीके से वादी को 'पूजा स्थल के भीतर जाने' और उसको पूजा के उसके अधिकार का प्रयोग करने से रोका । इस वाद में यह अभिकथन किया गया था कि 'राज्य' ने मुस्लिम निवासियों, जिनका प्रतिनिधित्व प्रतिवादी संख्या 1 से 5 द्वारा किया गया था, के उकसावे पर यह कार्रवाई की थी, जिसके परिणामस्वरूप हिंदुओं को अभिकथित रूप से उनके 'पूजन के विधिसम्मत अधिकार' से वंचित कर दिया गया था । वादी ने आशंका व्यक्त की कि भगवान राम की मूर्ति को सम्मिलित करते हुए समस्त मूर्तियों को पूजा स्थल से हटा दिया जाएगा । यह कार्यवाही अधिकथित रूप से 'वादी के अधिकार और स्वत्व पर प्रत्यक्ष आक्रमण' गठित करती थीं और इन कार्यवाहियों को विधि के विपरीत 'अत्याचारी कार्य' अभिकथित किया गया था ।

208. मुस्लिम प्रतिवादी संख्या 1 से 5 ने वादपत्र में समाविष्ट अभिकथनों से इनकार करते हुए लिखित कथन में अभिकथित किया कि :–

(i) वह संपत्ति, जिसके संबंध में वाद संस्थित कराया गया है, जन्मभूमि नहीं है बल्कि बाबर द्वारा निर्मित एक मस्जिद है । इस मस्जिद का निर्माण बाबर के निर्देशों पर मीर बाकी, जो बाबर की

सेना का सेनापति था, द्वारा मुगल सम्राट द्वारा उपमहाद्वीप पर विजय के अवसर पर वर्ष 1528 में किया गया था;

(ii) यह मस्जिद मुस्लिमों, जिनको इस मस्जिद में उपासना का अधिकार है, के लिए वक्फ़ के रूप में समर्पित की गई थी । बाबर ने मस्जिद की देखभाल और खर्चों के लिए वार्षिक अनुदान भी नियत किए थे, जिनको अवध के नवाब और ब्रिटिश सरकार द्वारा जारी रखा गया और समय-समय पर बढ़ाया भी गया;

(iii) वर्ष 1885 का वाद महंत रघुवर दास द्वारा केवल राम चबूतरा के संबंध में स्वामित्व की घोषणा के बाबत फाइल किया गया वाद था और इसलिए यह दावा आधारहीन था कि संपूर्ण भवन जन्मस्थान का प्रतिनिधित्व करता था । तारीख 24 दिसंबर, 1885 को यह वाद खारिज कर दिए जाने के परिणामस्वरूप 'चबूतरा के संबंध में मामले पर विचार नहीं किया गया था';

(iv) वर्ष 1936 के मुस्लिम वक्फ़ अधिनियम के अंतर्गत नियुक्त वक्फ़ के मुख्य आयुक्त ने इस मस्जिद को सुन्नी वक्फ़ अभिनिर्धारित किया था ;

(v) मुस्लिम सदैव इस मस्जिद के कब्जे में रहे हैं । यह स्थिति वर्ष 1528 में आरंभ हुई और तत्पश्चात् निरंतर बनी रही और इसके परिणामस्वरूप 'मुस्लिम इस संपत्ति के कब्जे में हैं ..... प्रतिकूल कब्जे के द्वारा';

(vi) तारीख 16 दिसंबर, 1949 तक, जिस समयबिंदु तक बाबरी मस्जिद के केंद्रीय गुंबद के नीचे कोई मूर्ति विराजमान नहीं थी, में नमाज अदा की जाती रही । यदि किसी व्यक्ति ने असद्भावपूर्ण आशय के साथ मस्जिद के भीतर कोई मूर्ति स्थापित कर दी, तो 'मस्जिद का अपर्वजन स्पष्ट रूप से हो जाता है और इस कार्य के लिए अभियुक्त व्यक्ति अभियोजन के दाई है';

(vii) वादी या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा पूजन या दर्शन के प्रयोजनार्थ मस्जिद में प्रवेश का प्रयास विधि का अतिक्रमण होगा । 1898 की दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन कार्यवाही आरंभ कर दी गई है; और

(viii) जन्मस्थान के रूप में बाबरी मस्जिद पर दावा करने वाला यह वर्तमान वाद आधारहीन है और अयोध्या में लंबी अवधि से एक अन्य मंदिर विद्यमान है, जिसमें भगवान राम की मूर्ति और अन्य मूर्तियां विराजमान हैं, जो वास्तव में भगवान राम का जन्मस्थान है ।

राज्य, जो प्रतिवादी संख्या 6 है द्वारा यह अभिकथित करते हुए लिखित कथन फाइल किया गया कि :–

(i) वादग्रस्त संपत्ति, जिसे बाबरी मस्जिद के नाम से जाना जाता है, को लंबी अवधि से मुस्लिमों द्वारा उपासना के प्रयोजनार्थ मस्जिद के रूप में प्रयोग किया जाता रहा है और भगवान राम के मंदिर के रूप में प्रयोग नहीं किया जाता रहा है;

(ii) तारीख 22 दिसंबर, 1949 की रात्रि में मस्जिद के भीतर चुपके से भगवान राम की मूर्तियों को स्थापित कर दिया गया था, जिससे लोक शांति और प्रशांति खतरे में पड़ गई । तारीख 23 दिसंबर, 1949 को नगर मजिस्ट्रेट ने 1898 की दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 के अधीन आदेश पारित किया जिसके अनुसरण में अपर नगर मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 145 के अधीन उसी तारीख को एक अन्य आदेश भी पारित किया गया, जिसके अंतर्गत विवादित संपत्ति को कुर्क कर दिया गया । यह आदेश लोक शांति को बनाए रखने के लिए पारित किए गए थे; और

(iii) नगर मजिस्ट्रेट ने फैज़ाबाद और अयोध्या के नगर पालिका बोर्ड के अध्यक्ष श्री प्रियदत्त राम को इस संपत्ति का रिसीवर नियुक्त कर दिया ।

इसी प्रकार से प्रतिवादी संख्या 8, अपर नगर मजिस्ट्रेट और प्रतिवादी संख्या 9 पुलिस अधीक्षक द्वारा भी लिखित कथन फाइल किए गए ।

प्रतिवादी संख्या 10 सुन्नी सेन्ट्रल वक्फ़ बोर्ड ने अपने लिखित कथन में यह अभिलिखित किया :–

(i) विवादित भवन भगवान राम का जन्मस्थान नहीं है और इसके भीतर कोई मूर्ति कभी भी स्थापित नहीं की गई;

(ii) वादग्रस्त संपत्ति एक मस्जिद थी जिसको बाबरी मस्जिद के नाम से जाना जाता था और जिसका निर्माण सम्राट बाबर के शासनकाल के दौरान किया गया था, जिसने इसके रखरखाव और खर्चों के लिए वार्षिक अनुदान भी निर्धारित किए थे और इन अनुदानों का संदाय अवध के नवाब और ब्रिटिश सरकार द्वारा किया जाता रहा और बढ़ाया भी गया;

(iii) तारीख 22-23 दिसंबर, 1949 की रात्रि को मस्जिद के भीतर मूर्तियां चुपके से लाई गई थीं;

(iv) वर्ष 1528 से तारीख 29 दिसंबर, 1949, जब धारा 145 के अधीन कुर्की की गई, तक मुस्लिम इस मस्जिद के कब्जे में निरंतर बने रहे । उन्होंने तारीख 23 दिसंबर, 1949 तक नियमित रूप से नमाज भी अदा की और तारीख 16 दिसंबर, 1949 तक शुक्रवार की नमाज भी अदा की गई;

(v) मस्जिद की प्रकृति वक्फ़ की थी और उसका स्वामित्व ईश्वर में निहित था;

(vi) वादी मस्जिद के बाबत भगवान राम के जन्मस्थान के रूप में दावा करने से विबंधित था चूंकि 1885 के वाद में, जिसे महंत रघुवर दास (जिनको इस वाद में वादी के पूर्वज के रूप में वर्णित किया गया है) द्वारा संस्थित कराया गया था और यह वाद मस्जिद के बाहर स्थित 17 फीट x 21 फीट की माप वाले मात्र राम चबूतरे तक सीमित था; और

(viii) बाबरी मस्जिद से अत्यधिक लघु दूरी पर राम जन्मस्थान पहले से ही स्थित है ।

प्रतिवादी संख्या 1 से 5 द्वारा फाइल किए गए लिखित कथन का वादी द्वारा फाइल किए गए प्रत्युत्तर में यह प्रकथन किया गया कि विवादित स्थल का प्रयोग वर्ष 1934 के पश्चात् कभी भी मस्जिद के रूप में नहीं किया गया । इस प्रत्युत्तर में वादियों ने आगे अभिकथन किया कि यह एक 'सामान्य ज्ञान' का विषय है कि हिंदू सदैव इस विवादित स्थल के कब्जे में थे जिस कारणवश प्रतिवादियों का दावा समाप्त हो जाता है ।

ठ.2 उच्च न्यायालय द्वारा विरचित किए गए विवाद्यक और उन पर निकाले गए निष्कर्ष :

209. (1) क्या वादग्रस्त संपत्ति श्री रामचंद्रजी की जन्मभूमि का स्थल है ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – मस्जिद के निर्माण के लिए किसी मंदिर का ध्वंस नहीं किया गया । बाबर के शासनकाल के दौरान जब तक मंदिर का निर्माण किया जा रहा था, विवादित परिसर को भगवान राम की जन्मस्थान नहीं माना जाता था या उनका जन्मस्थान होने का विश्वास नहीं किया जाता था ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – जन्मस्थान, जैसाकि हिंदुओं द्वारा विश्वास किया जाता है और उस स्थान की उपासना की जाती है, भीतरी बरामदे में विवादित ढांचे के केंद्रीय गुंबद द्वारा आच्छादित क्षेत्र है ।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. बी. शर्मा** – प्रतिवादियों के विरुद्ध निर्णय सुनाया गया ।

(2) क्या वाद में अंतर्वलित स्थल में भगवान रामचंद्र जी की कोई मूर्ति और उनकी चरण पादुका स्थित है ।

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – मूर्तियों को मस्जिद के भीतर सर्वप्रथम तारीख 22-23 दिसंबर, 1949 की रात्रि के दौरान एक मंच पर रखा गया था ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – मूर्तियों को तारीख 22-23 दिसंबर, 1949 की रात्रि के दौरान भीतरी बरामदे में विवादित ढांचे के केंद्रीय गुंबद के नीचे स्थापित किया गया था, किंतु इसके पूर्व वे मूर्तियां बाहरी बरामदे में विद्यमान थीं ।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. बी. शर्मा** – प्रतिवादियों के विरुद्ध निर्णीत किया ।

(3) क्या वादी को 'चरण पादुका' और वादग्रस्त स्थान में स्थित मूर्तियों की उपासना का कोई अधिकार है ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – एक मात्र बात जो कही जा सकती है, वह यह है कि राम चबूतरा टिफेथेलर के दौरे के पूर्व किंतु मस्जिद के निर्माण के पश्चात् अस्तित्व में आ चुका था । दोनों पक्षों का संयुक्त रूप से कब्जा था ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – वादी को युक्तियुक्त निर्बंधनों जैसेकि सुरक्षा, रखरखाव के अध्यधीन रहते हुए उपासना का अधिकार है ।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. बी. शर्मा** – प्रतिवादियों के पक्ष में निर्णीत किया ।

(4) क्या वादी को वादग्रस्त संपत्ति के दर्शन का अधिकार है ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – एक मात्र बात जो कही जा सकती है, वह यह है कि राम चबूतरा टिफेथेलर के दौरे के पूर्व किंतु मस्जिद के निर्माण के पश्चात् अस्तित्व में आ चुका था । दोनों पक्षों का संयुक्त रूप से कब्जा था ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – वादी को युक्तियुक्त निर्बंधनों जैसेकि सुरक्षा, रखरखाव के अध्यधीन रहते हुए उपासना का अधिकार है ।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. बी. शर्मा** – प्रतिवादियों के पक्ष में निर्णीत किया ।

(5-क) क्या वादग्रस्त संपत्ति, उप न्यायाधीश (**फैज़ाबाद रघुबर दास महंत** बनाम **सेक्रेटरी आफ स्टेट फार इंडिया और अन्य**) के न्यायालय में 1885 के मूल वाद संख्या 61/280 में अंतर्वलित वादग्रस्त संपत्ति थी ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – 1885 के वाद में कुछ भी निर्णीत नहीं किया गया और पूर्वन्याय का सिद्धांत लागू नहीं होता ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – इस विवाद्यक का उत्तर नकारात्मक में दिया गया ।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. बी. शर्मा** – संपत्ति नजूल भूमि के रूप में विद्यमान थी ।

(5-ख) क्या यह वादी के विरुद्ध निर्णीत किया गया था ?

(i) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – 1885 का वाद महंत भास्कर दास के विरुद्ध निर्णीत किया गया था और उनको कोई अनुतोष प्रदान नहीं किया गया था ।

(ii) **न्यायमूर्ति डी. बी. शर्मा** – संपत्ति नजूल भूमि के रूप में विद्यमान थी ।

(5-ग) क्या वह वाद सामान्य हिंदुओं के संज्ञान में था और क्या समस्त हिंदू उस वाद में हितबद्ध थे ?

(i) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – इस विवाद्यक का उत्तर नकारात्मक में दिया गया । अभिलेख पर इस बात को न्यायसंगत ठहराने के लिए ऐसी कोई भी सामग्री उपलब्ध नहीं है कि वाद महंत रघुबर दास द्वारा प्रतिनिधिक हैसियत में फाइल किया गया था ।

(ii) **न्यायमूर्ति डी. बी. शर्मा** – प्रतिवादियों के पक्ष में निर्णीत किया ।

(5-घ) क्या उपरोक्त वाद में विनिश्चय वर्तमान वाद को पूर्व न्याय के सिद्धांत द्वारा और किसी अन्य प्रकार से वर्जित करते हैं ?

(i) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – इस विवाद्यक का उत्तर नकारात्मक में दिया गया ।

(ii) **न्यायमूर्ति डी. बी. शर्मा** – प्रतिवादियों के पक्ष में निर्णीत किया ।

(6) क्या वादग्रस्त संपत्ति बाबर द्वारा निर्मित मस्जिद है जिसको सामान्यतया वर्ष 1528 में निर्मित बाबरी मस्जिद के नाम से जाना जाता है ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – मस्जिद का निर्माण बाबर द्वारा दिए गए आदेशों के अंतर्गत किया गया था । क्या इस मस्जिद का निर्माण वास्तविक रूप से मीर बाकी द्वारा किया गया था या किसी अन्य के द्वारा, यह तात्विक नहीं है । मुस्लिमों ने

इस मस्जिद में वर्ष 1934 तक नियमित रूप से नमाज अदा की, जिसके पश्चात् तारीख 22 दिसंबर, 1949 तक केवल शुक्रवार की नमाजें अदा की गईं । यह निरंतर कब्जे और प्रयोग के प्रयोजनार्थ पर्याप्त है । मस्जिद के निर्माण के लिए किसी मंदिर को ध्वस्त नहीं किया गया था ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – वादी वर्ष 1528 में बाबर द्वारा विवादित ढांचे के निर्माण को साबित कर पाने में विफल रहे हैं ।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. बी. शर्मा** – प्रतिवादियों के विरुद्ध निर्णीत किया गया ।

(7) क्या मुस्लिम वर्ष 1528 से निरंतर रूप से खुले तौर पर और प्रतिवादियों की जानकारी में और विशेष रूप से हिंदुओं की जानकारी में वादग्रस्त संपत्ति के कब्जे में रहे हैं ? यदि ऐसा है, तो इसके प्रभाव ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – स्वत्व का निर्धारण कब्जे के आधार पर होता है और दोनों ही पक्ष संयुक्त रूप से विवादित परिसर के कब्जे में थे ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – वादी के पक्ष में निर्णीत किया गया ।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. बी. शर्मा** – प्रतिवादियों के पक्ष में निर्णीत किया गया ।

(8) क्या वाद विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 42 के परंतुक द्वारा बाधित है ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – बाधित नहीं है ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – बाधित नहीं है ।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. बी. शर्मा** – प्रतिवादियों के पक्ष में निर्णीत किया गया ।

(9) क्या वाद मुस्लिम वक्फ़ अधिनियम (1936 का उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13) की धारा 5(3) के उपबंधों द्वारा बाधित है ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल द्वारा दिए गए निष्कर्षों से सहमत हूं ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – वादी के पक्ष में निर्णीत किया गया ।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. बी. शर्मा** – प्रतिवादियों के पक्ष में निर्णीत किया गया ।

(9-क) क्या उक्त अधिनियम सामान्य रूप से हिंदुओं और विशेष रूप से वर्तमान वाद के वादी के अधिकारों, विशेष रूप से उसके उपासना के अधिकार के संबंध में लागू नहीं होता ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल द्वारा दिए गए निष्कर्षों से सहमत हूं ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – सामान्य रूप से हिंदू पक्षों के पक्ष में ।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. बी. शर्मा** – प्रतिवादियों के पक्ष में निर्णीत किया गया ।

(9-ख) क्या उक्त अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाहियां, जैसाकि लिखित कथन के पैरा 15 में निर्दिष्ट किया गया है, दुरभिसंधि के फलस्वरूप हैं ? यदि ऐसा है तो इसके प्रभाव ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल द्वारा दिए गए निष्कर्षों से सहमत हूं ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – वादी के पक्ष में निर्णीत किया गया ।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. बी. शर्मा** – प्रतिवादियों के पक्ष में निर्णीत किया गया ।

(9-ग) क्या 1936 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13 के उक्त उपबंध कागज संख्या 454-ए पर अभिलिखित तारीख 9 मार्च, 1962 के वादी के काउंसिल के कथन में उल्लिखित कारणोंवश अधिकारातीत हैं ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल द्वारा दिए गए निष्कर्षों से सहमत हूं ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – इस विवाद्यक का उत्तर नकारात्मक में दिया गया ।

(10) क्या वर्तमान वाद समय द्वारा बाधित है ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान, न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** और **न्यायमूर्ति डी. बी. शर्मा** – वाद परिसीमा द्वारा बाधित नहीं है ।

(11-क) क्या वर्तमान वाद में सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 91 के उपबंध लागू होते हैं ? यदि ऐसा है, तो क्या वाद महाधिवक्ता द्वारा लिखित सहमति के अभाव में दूषित है ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – मैं न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल द्वारा निकाले गए निष्कर्षों से सहमत हूं ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – उत्तर नकारात्मक में दिया गया ।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. बी. शर्मा** – वादी के पक्ष में निर्णीत किया गया ।

(11-ख) क्या इस वाद में वादी द्वारा चाहे गए अधिकार सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 91 के उपबंधों से स्वतंत्र हैं ? यदि ऐसा है, तो इसके प्रभाव ।

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – मैं न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल द्वारा निकाले गए निष्कर्षों से सहमत हूं ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – उत्तर नकारात्मक में दिया गया ।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. बी. शर्मा** – वादी के पक्ष में निर्णीत किया गया ।

(12) क्या वाद सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 8 के अधीन पैरवी और सूचना के अभाव में दूषित है ? यदि ऐसा है, तो इसके प्रभाव ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – मैं न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल द्वारा निकाले गए निष्कर्षों से सहमत हूं ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** और **न्यायमूर्ति डी. बी. शर्मा** – उत्तर वादी के पक्ष में दिया गया ।

(13) क्या 1950 का वाद संख्या 2 (**श्री गोपाल सिंह विशारद** बनाम **जहूर अहमद**) सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 80 के अधीन सूचना के अभाव में दूषित है ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – मैं न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल द्वारा निकाले गए निष्कर्षों से सहमत हूं ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – बाधित नहीं है ।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. बी. शर्मा** – प्रतिवादियों के पक्ष में निर्णीत किया गया ।

(14) क्या 1950 का वाद संख्या 25 (**परमहंस रामचंद्र** बनाम **जहूर अहमद**) सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 80 के अधीन विधिमान्य सूचना के अभाव में दूषित है ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – मैं न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल द्वारा निकाले गए निष्कर्षों से सहमत हूं ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** और **न्यायमूर्ति डी. बी. शर्मा** – वाद वापस ले लिए जाने के कारण खारिज कर दिए जाने के पश्चात् यह विवाद्यक निरर्थक हो गया है ।

(15) क्या वाद प्रतिवादियों के असंयोजन के कारण दूषित है ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – मैं न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल द्वारा निकाले गए निष्कर्षों से सहमत हूं ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** और **न्यायमूर्ति डी. बी. शर्मा** – उत्तर वादी के पक्ष में नकारात्मक में दिया गया ।

(16) क्या प्रतिवादी या उनमें से कोई सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 35क के अधीन विशेष हर्जाने का हकदार है ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – मैं न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल द्वारा निकाले गए निष्कर्षों से सहमत हूं ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – काउंसेल ने इस विवाद्यक पर बल नहीं दिया ।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. बी. शर्मा** – वादी अनुतोष का हकदार नहीं है और वाद लागत सहित खारिज किया जाता है, जिसको दोनों पक्षों द्वारा वहन किया जाएगा ।

(17) वादी किस अनुतोष, यदि कोई हो, का हकदार है ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – मैं न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल द्वारा निकाले गए निष्कर्षों से सहमत हूं ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – वादी के उपासना के अधिकार पर संदेह व्यक्त नहीं किया जा सकता चूंकि विवादित स्थल में उस भूमि का भाग भी सम्मिलित है, जिसके बाबत यह विश्वास किया जाता है कि वह भगवान राम का जन्मस्थान है । वादी इस सीमा तक उन निर्बंधनों के अध्यधीन रहते हुए, जो उपासना स्थल की सुरक्षा और रखरखाव के प्रयोजनार्थ आवश्यक हैं, घोषणा का हकदार है ।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. बी. शर्मा** – वादी किसी अनुतोष का हकदार नहीं है और वाद लागत सहित खारिज किया जाता है, जिसको दोनों पक्षों द्वारा वहन किया जाएगा ।

ठ.3 विश्लेषण

210. वाद संख्या 1 में वादी की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री रंजीत कुमार ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन तारीख 29 दिसंबर, 1949 को मजिस्ट्रेट द्वारा पारित किए गए आदेश का उल्लेख किया जिसके द्वारा विवादित परिसर को कुर्क किया गया था और रिसीवर की नियुक्ति की गई थी । विद्वान् काउंसेल द्वारा अभिकथित किया गया था कि कतिपय मुस्लिमों द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 19, नियम 1 के अधीन तारीख 8-16 फरवरी, 1950 के मध्य चौदह शपथपत्र यह अभिकथित करते हुए फाइल किए गए थे कि :–

(i) वह स्थान जहां बाबरी मस्जिद स्थित थी, भगवान राम का

जन्मस्थान है । बाबरी मस्जिद का निर्माण भगवान राम के जन्मस्थान को तोड़े जाने के द्वारा किया गया था;

(ii) मुस्लिम ब्रिटिश शासन समाप्त होने के पश्चात् मस्जिद में केवल शुक्रवार की नमाज अदा करते थे;

(iii) हिंदुओं ने मस्जिद के निर्माण के पश्चात् अपना कब्जा नहीं छोड़ा और उन्होंने वहां पर उपासना जारी रखी;

(iv) हिंदुओं और मुस्लिमों, दोनों ने विवादित स्थल पर उपासना जारी रखी;

(v) मुस्लिमों ने 1934 के दंगों के पश्चात् भयवश मस्जिद में जाना बंद कर दिया था और तब से हिंदुओं ने मस्जिद के मुख्य भाग का कब्जा ले लिया था; और

(vi) यदि मस्जिद का कब्जा हिंदुओं को इस आधार पर हस्तगत कर दिया जाता कि उस स्थान पर नमाज अदा किया जाना शरीयत के विरुद्ध था, तो इसमें किसी को कोई एतराज नहीं था ।

211. न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने इन शपथपत्रों पर भरोसा नहीं किया और अभिनिर्धारित किया कि :–

"पूर्वोक्त दस्तावेज उस सीमा, जिस तक इस तथ्य को साबित किया जाना है कि वे विवादित दस्तावेज नहीं हैं, जिनको मजिस्ट्रेट के समक्ष फाइल किया गया था और जो नगर मजिस्ट्रेट के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अंतर्गत की गई कार्रवाई के अभिलेख का भाग है, बल्कि उनकी अंतर्वस्तु पर भरोसा किया जाना चाहिए और हमारे विचार में इन दस्तावेजों के लेखकों को न्यायालय के समक्ष पेश किया जाना और उनकी प्रतिपरीक्षा का अवसर अन्य पक्षों जिनके हितों के विरुद्ध इन दस्तावजों में कतिपय प्रकथन समाविष्ट हैं, को दिया जाना आवश्यक है । इन दस्तावेजों के किसी भी लेखक को पेश नहीं किया गया और वे व्यक्तिगत रूप से किसी भी कार्रवाई के पक्ष में भी नहीं हैं । इसलिए हमको उक्त दस्तावेजों की अंतर्वस्तु की सत्यता को

प्रमाणित कराने का कोई लाभ नहीं होगा । इसलिए हमारे विचार में उक्त दस्तावेजों की अंतर्वस्तु को साबित किए जाने के प्रयोजनार्थ किसी भी लेखक की अनुपस्थिति में इन दस्तावेजों का अवलंब नहीं लिया जा सकता और इसलिए पक्षों के पक्ष में या उनके विरुद्ध उक्त दस्तावेजों से कुछ भी प्राप्त नहीं किया जा सकता ।"

न्यायमूर्ति एस. यू. खान, न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल द्वारा की गई मताभिव्यक्तियों से सहमत हैं । तथापि, न्यायमूर्ति डी. बी. शर्मा ने उन शपथपत्रों, जिनको सुनवाई के प्रयोजनार्थ ग्रहण किया जाना है, के बाबत अभिनिर्धारित किया :–

"उन व्यक्तियों के शपथपत्रों, जिनके माध्यम से वादी दावा कर रहे हैं, ने मजिस्ट्रेट द्वारा सशक्त अधिकारी के समक्ष शपथपूर्वक कथन किया था, जो साक्ष्य में स्वीकार किए जाने योग्य है ...."

212. श्री रणजीत कुमार ने निम्नलिखित निवेदन किए :–

(i) 1885 के वाद का वर्तमान वाद पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता चूंकि पूर्ववर्ती वाद में एक चबूतरे जो मस्जिद के बाहर स्थित चबूतरे तक सीमित था, के ऊपर मंदिर स्थापित किए जाने की अनुज्ञा की ईप्सा की गई थी । तथापि, वर्तमान वाद 'धर्म और रीति-रिवाजों के अनुसार' उपासना और भगवान राम के दर्शन के अधिकार की ईप्सा के संबंध में है;

(ii) विचारण न्यायालय ने तारीख 3 मार्च, 1951 को वाद संख्या 1 में पारित तारीख 19 जनवरी, 1950 के अनंतिम आदेश तक सीमित था जिसके द्वारा व्यादेश को मूर्तियों को विवादित स्थल से हटाए जाने को प्रवारित किए जाने और पूजा के निर्वहन में मध्यक्षेप कारित किए जाने तक उपांतरित कर दिया गया था । विचारण न्यायालय ने अयोध्या के कुछ मुस्लिम निवासियों के शपथपत्रों को निर्दिष्ट करते हुए अभिकथित किया कि कम से कम वर्ष 1936 तक 'मुस्लिमों ने इस स्थल का प्रयोग न तो मस्जिद के रूप में किया है और न ही वहां पर नमाज अदा की है' और 'निर्दिष्ट किए गए शपथपत्रों के आधार पर वादी के पक्ष में कोई प्रथमदृष्ट्या मामला नहीं बनता' । इलाहाबाद उच्च न्यायालय की

खंडपीठ द्वारा तारीख 26 अप्रैल, 1955 को अपील में उपरोक्त आदेश की पुष्टि कर दी गई थी, यद्यपि उच्च न्यायालय ने यह मताभिव्यक्ति की थी कि मामले को निर्णय के लिए आरक्षित किए जाने के पश्चात् शपथपत्रों को अभिलेख पर लिया जाना उचित नहीं था;

(iii) तीन समाचारपत्रों में संप्रकाशित सार्वजनिक सूचना के प्रकाशन, जिनके द्वारा धारा 145 के अंतर्गत कार्रवाई के संबंध में आक्षेप आमंत्रित किए गए थे, के बावजूद किसी भी मुस्लिम प्रतिवादी ने कोई विपरीत कथन फाइल नहीं किया;

(iv) इन शपथपत्रों का सहयोगकारी महत्व है – जब प्रतिवादी संख्या 1 से 5 ने तारीख 21 फरवरी, 1950 को धारा 145 की कार्यवाहियों में फाइल किए गए शपथपत्रों की जानकारी के बावजूद वाद संख्या 1 में लिखित कथन फाइल किए थे, तब उन्होंने मुस्लिमों द्वारा किए गए पक्षकथन के विरुद्ध कोई आक्षेप नहीं किया था;

(v) उच्च न्यायालय के समक्ष वर्तमान वाद में इन शपथपत्रों को अभिलेख पर फाइल कर दिया गया था और उनको सम्यक् रूप से प्रदर्शित भी किया गया था । ये शपथपत्र सुसंगत ऐतिहासिक तथ्यों के भाग हैं और इनको पूर्णतया अस्वीकृत नहीं किया जा सकता;

(vi) प्रतिवादी संख्या 1 से 5 ने यह प्रार्थना करते हुए एक आवेदन फाइल किया कि वाद संख्या 1 पर आदेश 1, नियम 8 के अधीन प्रतिनिधिक वाद के रूप में विचार किया जाना चाहिए, जिसका विरोध वादी द्वारा किया गया । सिविल न्यायाधीश ने तारीख 27 अक्तूबर के आदेश द्वारा इस आवेदन को खारिज कर दिया था;

(vii) इस न्यायालय के समक्ष दलीलों के अनुक्रम के दौरान उन प्रदर्शों, जिनका अवलंब सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड द्वारा विवादित स्थल पर वर्ष 1858 से अपने कब्जे को दर्शित किए जाने के प्रयोजनार्थ लिया गया, में इस स्थल को 'जन्मस्थान मस्जिद' या

'मस्जिद जन्मस्थान' के रूप में निर्दिष्ट किया गया है, जो इस बात का संकेत है कि इस स्थल को सदैव जन्मस्थान या भगवान राम का जन्मस्थान के रूप में निर्दिष्ट किया जाता था;

(viii) 'दर्शन' या उपासना के प्रयोजनार्थ मंदिर में प्रवेश का अधिकार ऐसा अधिकार है, जो स्वयमेव संस्था की प्रकृति से उद्भूत होता है नर हरि शास्त्री **बनाम** श्री बद्रीनाथ टेम्पल कमेटी, [1952] एस. सी. आर. 849 वाला मामला । उपासना में देवता या देवताओं के दर्शन के प्रयोजनार्थ मंदिर के गर्भगृह में उपस्थिति भी सम्मिलित होती है शास्त्री यग्नपुरुषादजी **बनाम** मूलदास भूदरदास वैश्य, [1966] 3 एस. सी. आर. 242 वाला मामला । यदि साधारण जनता ने मंदिर का प्रयोग सदैव सार्वजनिक उपासना और समर्पण के प्रयोजनार्थ उसी प्रकार से किया है, जैसेकि वे अन्य मंदिरों में करते हैं, तो यह किसी सार्वजनिक मंदिर की निश्चायक विद्यमानता के पक्ष में मजबूत स्थिति होगी बालाशंकर महाशंकर भट्टजी **बनाम** चैरेटी कमिश्नर, गुजरात राज्य (1995) (सप्ली.)1 एस. सी. सी. 485 वाला मामला ।

विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री रंजीत कुमार ने तारीख 3 मार्च, 1951 को प्रदान किए गए अस्थाई व्यादेश को दृष्टि में रखते हुए मजिस्ट्रेट के तारीख 30 जुलाई, 1953 के आदेश, जिसके द्वारा धारा 145 के अधीन कार्यवाही वाली फाइल को अभिलेखागार को भेज दिया गया था, को निर्दिष्ट किया । इस आदेश में मजिस्ट्रेट ने उल्लेख किया था कि धारा 145 के अधीन फाइल किया गया मामला 'अनावश्यक' रूप से लंबित है और तारीखें इस उम्मीद के साथ निर्धारित की जा रही हैं कि सिविल वाद का निस्तारण हो जाएगा या अस्थाई व्यादेश रिक्त हो जाएगा । तथापि, मजिस्ट्रेट ने यह भी उल्लेख किया था कि सिविल न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष दांडिक न्यायालय पर बाध्यकारी हैं और धारा 145 के अधीन पृथक् रूप से कार्यवाही को आरंभ किए जाने से किसी उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती । श्री रंजीत कुमार ने इस न्यायालय का ध्यान तारीख 22 जुलाई, 1954 के आवेदन की ओर आकर्षित किया जिसको गोपाल सिंह विशारद द्वारा मजिस्ट्रेट के समक्ष यह प्रार्थना करते हुए फाइल किया गया था कि धारा 145 के अधीन समस्त कार्यवाहियों

से संबंधित फाइलों को संरक्षित रखा जाए और उनको सिविल न्यायालय द्वारा पारित विनिश्चय की अंतिमता तक नष्ट न किया जाए ।

213. सुन्नी सेन्ट्रल वक्फ़ बोर्ड की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल डा. राजीव धवन ने प्रत्युत्तर में निम्नलिखित निवेदन किए :–

(i) प्रतिवादी संख्या 1 से 5 द्वारा लिखित कथन फाइल किए गए हैं परंतु इन लिखित कथनों में सुन्नी सेन्ट्रल वक्फ़ बोर्ड का लिखित कथन सम्मिलित नहीं है;

(ii) मस्जिद का निर्माण बाबर द्वारा अपने सेनापति मीर बाकी के माध्यम से कराया गया था और विधिमान्य वक्फ़ को समर्पित कर दिया गया था । 1936 के मुस्लिम वक्फ़ अधिनियम के अंतर्गत वक्फ़ के मुख्य आयुक्त ने निर्णीत किया कि यह मस्जिद सुन्नी वक्फ़ है;

(iii) मुस्लिम वर्ष 1528 से मस्जिद के कब्जे में रहे हैं और चार सौ वर्षों से अधिक की अवधि से कब्जे में बने रहने के कारण विवादित संपत्ति पर प्रतिकूल कब्जे के आधार पर उनके अधिकार की पुष्टि हो जाती है;

(iv) वाद संख्या 1 प्राथमिक रूप से राज्य प्राधिकारियों के विरुद्ध फाइल किया गया था चूंकि मुख्य शिकायत उन प्राधिकारियों के विरुद्ध थी, जो वादी को विवादित परिसर के भीतर उपासना करने से रोकते थे;

(v) वाद वादी के व्यक्तिगत अधिकार अर्थात् विवादित ढांचे के भीतर उसके उपासना के अधिकार को प्रवर्तित किए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल किया गया था और इसलिए वह अधिकार उसकी मृत्यु के साथ स्वत: समाप्त हो गया;

(vi) धारा 145 की कार्यवाहियों के अधीन अयोध्या के मुस्लिमों द्वारा फाइल किए गए चौदह शपथपत्र भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 3 के अधीन साक्ष्य में ग्रहण किए जाने योग्य नहीं हैं । ये शपथपत्र सुसंगत नहीं हैं चूंकि इन शपथपत्रों को प्रस्तुत

करने वालों की प्रतिपरीक्षा नहीं की गई और चूंकि इन शपथपत्रों के शपथकर्ता व्यक्तिगत रूप से किसी भी वाद के पक्ष नहीं हैं, इसलिए उनके शपथपत्रों का अवलंब नहीं लिया जा सकता । न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने इन शपथपत्रों को विश्वसनीय नहीं माना;

(vii) इस बाबत कोई भी स्पष्ट उल्लेख नहीं है कि क्या वादी ने पहले भी विवादित ढांचे के भीतर कोई उपासना की थी और उसने विवादित ढांचे के केंद्रीय गुंबद के नीचे भगवान राम के सटीक जन्मस्थान का उल्लेख नहीं किया है; और

(viii) सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड द्वारा जिन प्रदर्शों का अवलंब लिया गया है, वे स्पष्टत: दर्शित करते हैं कि हिंदू पक्षों की पहुंच केवल बाहरी बरामदे, जो राम चबूतरा और सीता रसोई थी, तक थी । भीतरी बरामदे में घुसपैठ के समस्त प्रयासों को विफल कर दिया गया था और प्राधिकारियों ने उन लोगों को निष्कासित किए जाने के लिए निर्देशित किया था, जिन्होंने भीतरी बरामदे में प्रवेश करने का प्रयास किया था ।

214. किसी भी व्यक्ति, जिसने अभिकथित रूप से धारा 145 के अधीन कार्यवाहियों में शपथपत्र फाइल किए थे, का उच्च न्यायालय के समक्ष सिविल विचारण के अनुक्रम के दौरान साक्ष्य में परीक्षण नहीं किया गया । किसी व्यक्ति द्वारा शपथपत्र पर किए गए कथन की विश्वसनीयता को केवल तभी स्वीकार किया जा सकता है, यदि साक्षी को साक्ष्य में न्यायालय के समक्ष पेश किया जाता है । तथापि, वर्तमान मामले में मुस्लिम निवासियों, जिन्होंने धारा 145 के अधीन कार्यवाहियों में मजिस्ट्रेट के समक्ष शपथपत्र प्रस्तुत किए थे, को साक्षियों के रूप में न तो उद्धृत किया गया और न ही पेश किया गया । विपक्षी को शपथपत्रों पर किए गए कथनों को चुनौती देने के किसी अवसर की अनुपस्थिति में इन शपथपत्रों की अंतर्वस्तुओं पर विश्वास नहीं किया जा सकता ।

215. मूल वादी गोपाल सिंह विशारद वाद के लंबन के दौरान दिवंगत हो गए और उनको तारीख 22 फरवरी, 1986 के न्यायालय के आदेश के अनुसरण में उनके पुत्र राजेन्द्र सिंह विशारद द्वारा प्रतिस्थापित किया गया । इस बाबत यह दलील दी गई कि मूल वादी ने विवादित संपत्ति पर

अपने उपासना के व्यक्तिगत अधिकार को प्रवर्तित किए जाने के प्रयोजनार्थ वाद संस्थित कराया था और इसलिए उसकी मृत्यु हो जाने के पश्चात् उसका व्यक्तिगत अधिकार स्वत: समाप्त हो गया और वाद का उपशमन हो गया । यहां पर वाद संख्या 1 में किए गए अभिवचनों का उल्लेख यह विनिर्धारित किए जाने के प्रयोजनार्थ किया जाना आवश्यक होगा कि क्या मूल वादी द्वारा दृढ़तापूर्वक जिन अधिकारों का उल्लेख किया गया है, वह एक व्यक्तिगत अधिकार था या उस अधिकार में बृहत्तर लोकहित अंतर्वलित था, जिसका दावा अन्य उपासनाकर्ताओं द्वारा भी सामान्य रूप से किया जाता है । वाद संख्या 1 के वादपत्र का पैरा 3 इस प्रकार है :–

> "... प्रतिवादी संख्या 6 ने वादी को उस स्थान के भीतर जाने से रोका था, जहां श्रीरामचंद्रजी की मूर्ति और अन्य मूर्तियां स्थापित थीं और यह ज्ञात हुआ था कि प्रतिवादी संख्या 1 से 5 और उनके अन्य सहयोगियों के आधारहीन और असत्य दुराग्रह से प्रभावित होकर प्रतिवादी संख्या 7 से 9 ने हिंदू जनता को उपासना का निर्वहन करने और दर्शन करने के उनके विधिसम्मत अधिकार से वंचित कर दिया था । प्रतिवादी संख्या 6 ने घोषणा की थी कि हिंदू जनता को उनके उपरोक्त अधिकार से इसी प्रकार से भविष्य में भी वंचित रखा जाएगा और उपरोक्त अनौचित्य से परिपूर्ण कार्यों के कारण मूल वादी के मालिकाना अधिकार, जिनका उसने सदैव प्रयोग किया था, का अतिलंघन हो रहा है और इन परिस्थितियों में वर्तमान वादी को उपरोक्त धार्मिक अधिकारों के प्रयोग में प्रतिवादियों की तरफ से अनुचित और विधि विरुद्ध मध्यक्षेप की पूर्णत: आशंका और भय है ।"

216. वाद संख्या 1 में अंतर्वलित विवाद्यक वे विवाद्यक हैं, जो वाद संख्या 5 से संबंधित हैं और जिनके बाबत वाद संख्या 5 में दलीलें दी गई थीं । वाद संख्या 5 में जिस अनुतोष की ईप्सा की गई, वह अनुतोष वादी के प्रार्थना करने के अधिकार पर प्रत्यक्ष प्रभाव रखेगा, जैसाकि वाद संख्या 1 में दावा किया गया । तद्नुसार, हम वाद संख्या 5 में दी गई दलीलों पर विचार करते समय वाद संख्या 1 में दी गई दलीलों पर विचार करेंगे ।

ड. वाद संख्या 3 : निर्मोही अखाड़ा

ड.1 अभिवचन

217. निर्मोही अखाड़ा का दावा है कि जन्मस्थान, जिसको सामान्यत: जन्मभूमि के नाम से जाना जाता है, जो भगवान राम का जन्मस्थान है, उससे 'संबंधित है और सदैव संबंधित रहा है' और वही इसका प्रबंध कर रहा है और वहां पर नियुक्त महंत और सरवरी के माध्यम से चढ़ावा प्राप्त कर रहा है । रिसीवर के अतिरिक्त दूसरे से पांचवां प्रतिवादी शासकीय प्रत्यर्थी है, जिनका प्रतिनिधित्व उत्तर प्रदेश राज्य और उसके अधिकारियों द्वारा किया गया है । वादपत्र में यह प्रकथन समाविष्ट है कि मंदिर 'सदैव' निर्मोही अखाड़ा के कब्जे में रहा है और कम से कम वर्ष 1934 से तो उसमें प्रवेश करने और उपासना करने की अनुज्ञा केवल हिंदुओं को रही है । अन्य शब्दों में निर्मोही अखाड़ा विवादित ढांचे की हैसियत को मस्जिद के रूप में स्वीकार करने से इनकार करता है । वाद के संस्थित किए जाने का आधार नगर मजिस्ट्रेट द्वारा 1898 की दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन कार्यवाहियों का आरंभ किया जाना था । यह कार्यवाहियां अभिकथित रूप से मुस्लिम पक्षों, जिनका प्रतिनिधित्व छठे और आठवें प्रतिवादियों द्वारा किया गया था, द्वारा 'दोषपूर्ण पैरवी' के आधार पर बिना किसी विधिक कारण के आरंभ की गई थीं । इसके परिणामस्वरूप निर्मोहियों ने अभिकथित किया कि उनको 'उक्त मंदिर के उनके प्रबंधन और प्रभार' के अधिकार से दोषपूर्ण ढंग से वंचित किया गया था और वे धारा 145 के अधीन कार्यवाहियों, अर्थात् वे कार्यवाहियां, जिनको प्रतिवादियों की मिलीभगत के कारण अनुचित रूप से विलंबित किया गया है, के निष्कर्ष की प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

मुस्लिम पक्षों को इसलिए पक्ष बनाया गया है, क्योंकि वे अभिकथित रूप से इस बात को सुनिश्चित करने में हितबद्ध हैं कि मंदिर का प्रभार और प्रबंधन निर्मोही अखाड़े के सुपुर्द न किया जाए । अभिकथित रूप से इस वाद का वादकारण तारीख 5 जनवरी, 1950 को उद्भूत हुआ था जब रिसीवर ने अवैध रूप से मंदिर का प्रबंधन और प्रभार निर्मोही अखाड़ा से ले लिया था । इस घटना के पश्चात्, जो तारीख 6 दिसंबर, 1992 को घटित हुई (जिसके बाबत निर्मोहियों का यह

दावा है कि 'कुछ शरारती तत्वों' द्वारा मंदिर की संपत्ति को ध्वस्त कर दिया गया) के अनुसरण में वादपत्र को संशोधित किया गया था । संशोधित वादपत्र में उस न्यास-विलेख को निर्दिष्ट किया गया है, जिसको निर्मोही अखाड़ा द्वारा तारीख 19 मार्च, 1949 को निष्पादित किया गया था और जिसके द्वारा न्यास विलेख की विद्यमानता को लिखत में परिवर्तित कर दिया गया था । अखाड़ा का दावा है कि उसके स्वामित्वाधीन अनेक मंदिर और संपत्तियां हैं, जो उसमें निहित होती हैं । इस वाद में जिस अनुतोष का दावा किया गया है, वह 'जन्मभूमि के उपरोक्त मंदिर के प्रबंधन और प्रभार से' रिसीवर को हटाए जाने और उसका कब्जा वादी को दिए जाने के बाबत है ।

वादपत्र में समाविष्ट प्रकथन और साथ ही साथ उसमें याचित अनुतोष जिनका दावा निर्मोही अखाड़ा द्वारा किया गया है, यह उपदर्शित करते हैं कि दावा हक पर आधारित है, जो मंदिर के प्रभार और प्रबंधन के संबंध में है । निर्मोहियों ने इस हैसियत में यह अभिकथित किया है कि वे जन्मभूमि मंदिर के कब्जे में रहे हैं और श्रद्धालुओं द्वारा चढ़ाए गए चढ़ावे को प्राप्त करते रहे हैं । इस वादपत्र में उन मंदिरों का निदेश समाविष्ट है, जो निर्मोही अखाड़ा के स्वामित्वाधीन हैं और उनके द्वारा प्रबंधित हैं । अंततः, उस अनुतोष का दावा किया गया है, जिसके द्वारा रिसीवर को निदेशित किया जाए कि वह मंदिर का प्रबंधन और प्रभार उनको हस्तगत कर दे ।

218. लिखित कथन में, जिसको मुस्लिम पक्षों (प्रतिवादी संख्या 6 से 8) द्वारा फाइल किया गया था, यह अभिवाक्य किया गया था कि 1885 का वाद, जिसको महंत रघुबर दास द्वारा संस्थित कराया गया था, ईप्सित अनुतोष मस्जिद के बाहर स्थित चबूतरे तक सीमित था और मस्जिद, जिसको स्थल मानचित्र में चित्रित किया गया था, के बाबत कोई आक्षेप नहीं किया गया था ।

निर्मोही अखाड़ा ने अपने प्रत्युत्तर में महंत रघुबर दास द्वारा फाइल किए गए वाद के बाबत अनभिज्ञता व्यक्त की । अखाड़ा का यह दावा था कि उसको इस वाद की कार्यवाहियों के परिणामस्वरूप मंदिर के प्रबंधन के अधिकार और प्रभार से दोषपूर्वक वंचित कर दिया गया है । यद्यपि वादपत्र के अवलोकन से यह दर्शित होता है कि वाद में किया

गया दावा भीतरी बरामदे के संबंध में था, फिर भी दसवें प्रतिवादी द्वारा फाइल किए गए लिखित कथन के उत्तर में निर्मोही अखाड़ा द्वारा फाइल किए गए प्रत्युत्तर में यह अभिकथित किया गया कि बाहरी प्रांगण 1982 तक उनके कब्जे में था और उनके स्वामित्वाधीन था और उनके द्वारा प्रबंधित था और वर्ष 1982 में इसका कब्जा 1982 के नियमित वाद संख्या 39 में रिसीवर द्वारा ले लिया गया था ।

219. वाद संख्या 3 में निर्मोही अखाड़ा द्वारा फाइल किए गए अभिवचन में समाविष्ट प्रकथनों को वाद संख्या 5 में उनके द्वारा फाइल की गई प्रतिरक्षा की प्रकृति के साथ पढ़ा जाना चाहिए । वाद संख्या 5 भगवान राम के देवता और जन्मस्थान द्वारा वादमित्र के माध्यम से संस्थित कराया गया था । निर्मोही अखाड़ा ने वाद संख्या 5 में फाइल किए गए अपने लिखित कथन में वाद की पोषणीयता को इस आधार पर चुनौती दी है कि जन्मस्थान विधिक व्यक्ति नहीं है और वादमित्र को देवता और जन्मस्थान की तरफ से वाद को संस्थित कराने का कोई अधिकार या प्राधिकार नहीं था । निर्मोही अखाड़ा ने स्वयं को वाद संख्या 5 से यह दावा करते हुए दूर रखा कि भगवान राम की मूर्ति को 'रामलला विराजमान' के रूप में नहीं जाना जाता है और जन्मस्थान साधारणत: एक स्थान है और यह स्थान विधिक व्यक्ति नहीं है ।

निर्मोही अखाड़ा ने लिखित कथन में दावा किया है कि 'विवादित मंदिर में स्थापित भगवान श्रीराम का शिबायत' ही वास्तविक व्यक्ति है और 'केवल' अखाड़ा को ही मंदिर पर नियंत्रण रखने, उसका पर्यवेक्षण करने और मरम्मत कराने और यहां तक कि उसका पुनर्निर्माण कराने का अधिकार है, यदि ऐसा किया जाना आवश्यक हो । उन्होंने अपने लिखित कथन में यह दावा भी किया है कि शिबायत और प्रबंधक की अपनी हैसियत के रूप में 'मंदिर निर्मोही अखाड़ा की संपत्ति है' और वाद संख्या 5 में वादी 'को वास्तविक रूप से वाद फाइल करने का कोई स्वत्व प्राप्त नहीं है' । उन्होंने दलील दी कि वाद संख्या 5 मंदिर का प्रबंधन करने के निर्मोही अखाड़ा के अधिकारों का अतिलंघन करता है । निर्मोही अखाड़ा की दलील है कि संपूर्ण परिसर उनकी संपत्ति है और वाद संख्या 5 के वादियों को निर्मोही अखाड़ा के अधिकार और स्वत्व के विरुद्ध घोषणात्मक अनुतोष प्राप्त करने का कोई अधिकार नहीं है । अतिरिक्त

लिखित कथन में यह दावा किया गया है कि विवादित ढांचे का बाहरी भाग निर्मोही अखाड़ा के प्रबंधन और प्रभार में था जब तक कि उसको 1982 के नियमित वाद संख्या 239 में नियुक्त रिसीवर द्वारा कुर्क नहीं कर लिया गया ।

ड.2 वाद संख्या 3 और वाद संख्या 5 के मध्य टकराव

220. वाद संख्या 3 के वादी और वाद संख्या 5 के प्रतिवादी के रूप में निर्मोही अखाड़ा के अभिवचनों के विश्लेषण से निम्नलिखित स्थिति उत्पन्न होती है :–

(i) निर्मोही अखाड़ा का दावा राम जन्मभूमि मंदिर के प्रबंधन और प्रभार के प्रयोजनार्थ है;

(ii) ईप्सित अनुतोष रिसीवर द्वारा मंदिर का प्रबंधन और प्रभार उनको हस्तगत किए जाने के प्रयोजनार्थ है;

(iii) निर्मोही अखाड़ा ने उपरोक्त (i) और (ii) के संदर्भ में यह दावा किया है कि वह मंदिर के कब्जे में था;

(iv) जिस अधिकार का दावा किया गया है, उससे वंचित तब किया गया, जब रिसीवर ने तारीख 5 जनवरी, 1950 को प्रभार और प्रबंधन ले लिया;

(v) निर्मोही अखाड़ा का दावा शिबायत की हैसियत और मंदिर के प्रबंधक के रूप में किया गया है;

(vi) निर्मोही अखाड़ा वाद संख्या 5 की पोषणीयता का विरोध इस आधार पर करता है कि शिबायत के रूप में केवल उनको भगवान राम के देवता का प्रतिनिधित्व करने का अधिकार प्राप्त है;

(vii) वाद फाइल करने के लिए निर्मोही अखाड़ा का अधिकार किसी तृतीय पक्ष के अपवर्जन में है और इसलिए वाद संख्या 5, जिसको वादमित्र के माध्यम से संस्थित कराया गया है, के बाबत दृढ़तापूर्वक यह प्रकथन किया गया है कि यह वाद पोषणीय नहीं है; और

(viii) विधिक अस्तित्व के रूप में राम जन्मस्थान की हैसियत

से इनकार किया गया है और इसलिए (निर्मोही अखाड़ा के अनुसार) वाद संख्या 5 में किए गए दावे की पैरवी के लिए उसको (राम जन्मस्थान को) अधिकार नहीं है ।

अभिवचनों और निवेदनों, जिनको सुनवाई के अनुक्रम के दौरान प्रस्तुत किया गया, के आधार पर वाद संख्या 3 और वाद संख्या 5 में वादियों के मध्य सुस्पष्ट रूप से दावों और हकदारी के टकराव उद्भूत होते हैं ।

221. वाद संख्या 5 में वादियों की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री के. पारासरन ने निवेदन किया कि वाद संख्या 3 परिसीमा द्वारा बाधित है, यह एक ऐसा निवेदन है, जिसको वाद संख्या 4 में वादी की तरफ से डा. धवन द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गया । इसके विपरीत यह उल्लेख किया जाना चाहिए कि डा. धवन ने निवेदन किया कि निर्मोही अखाड़ा तथ्यात्मक और साक्ष्यिक रूप से जन्मस्थान में भगवान राम की मूर्तियों के संबंध में शिबायती अधिकारों का दावा करने का हकदार है । तथापि, उन्होंने यह दलील भी दी कि वाद संख्या 3 परिसीमा द्वारा बाधित है और इसलिए इस वाद में कोई अनुतोष न तो प्रदान किया जाना चाहिए और न ही प्रदान किया जा सकता है । इसलिए, इस न्यायालय के समक्ष दी गई दलीलों के आधार पर निम्नलिखित बिंदु उद्भूत होते हैं :–

(i) वाद संख्या 4 और वाद संख्या 5 के वादियों ने वाद संख्या 3 को परिसीमा के वर्जन के आधार पर चुनौती दी है;

(ii) वाद संख्या 5 के वादियों ने भगवान राम की मूर्तियों के शिबायत होने के नाते वाद संख्या 3 के वादियों के दावे का विरोध किया है; और

(iii) वाद संख्या 4 के वादी ने वाद संख्या 3 के वादी की हकदारी को शिबायत होने के नाते यह सावधानी लेते हुए स्वीकार किया है कि वाद परिसीमा द्वारा बाधित है ।

222. इस न्यायालय के समक्ष वाद संख्या 3 में वादी की तरफ से उपस्थित हो रहे विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री एस. के जैन द्वारा यह शंका व्यक्त की गई कि क्या शिबायत को यह अधिकार है कि वह देवता

के दावे के विपरीत किसी भी प्रकार से स्वत्व या स्वामित्व के बाबत दृढ़तापूर्वक दावा करे । इसके उत्तर में श्री जैन ने निवेदन किया कि निर्मोही अखाड़े का दावा प्रबंधन के लिए है और मंदिर के प्रबंधन का प्रभार शिबायत की प्रकृति का है और इससे अधिक कुछ भी नहीं । इसलिए, यद्यपि इस वाद में वाक्यांश 'स्वयं का' और 'संबंधित' का प्रयोग किया गया है, किंतु ये वाक्यांश इस वाद में शिबायत के ऊपर या उससे उच्चतर इस बाबत दृढ़तापूर्वक दावा किए जाने के प्रयोजनार्थ आशयित नहीं हैं । श्री जैन के निवेदन का परीक्षण परिसीमा के विवाद्यक के संदर्भ में कुछ समय पश्चात् किया जाएगा । तथापि, इस प्रक्रम पर यह उल्लेख भी किया जाना चाहिए कि श्री जैन ने सुनवाई के अनुक्रम के दौरान वाद संख्या 5 की पोषणीयता के बाबत निर्मोही अखाड़ा के पक्षकथन पर एक कथन प्रस्तुत किया, जो निम्नलिखित है :–

> "1. निर्मोही अखाड़ा 1989 के वाद संख्या 5, जिसको वादी संख्या 1 और 2 देवताओं की तरफ से वादी संख्या 3, जो सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 32, नियम 1 के अधीन वादमित्र है, के माध्यम से फाइल किया गया की पोषणीयता के विवाद्यक पर बल नहीं देता । परंतु यह तब जबकि अन्य हिंदू पक्ष अर्थात् 1989 के मूल वाद संख्या 1 का वादी और 1989 के मूल वाद संख्या 5 का वादी संख्या 3 प्रश्नगत देवताओं के संबंध में निर्मोही अखाड़ा के शिबायती अधिकार और वादी निर्मोही अखाड़ा द्वारा 1989 के वाद संख्या 3 की पोषणीयता पर बल नहीं देते या उनको चुनौती नहीं देते ।
>
> 2. वादी – निर्मोही अखाड़ा द्वारा यह निवेदन किया गया है कि वे 1989 के वाद संख्या 3 में पक्षों के रूप में देवताओं की अनुपस्थिति में भी स्वतंत्र रूप से वाद को जारी रख सकते हैं, चूंकि देवताओं की पहचान का विलय शिबायत – निर्मोही अखाड़ा की पहचान के साथ हो चुका है ।
>
> 3. यह अभिकथन किया गया है कि निर्मोही अखाड़ा द्वारा 'रिसीवर से प्रभार और प्रबंधन के पुनर्स्थापन के लिए' ईप्सित अनुतोषों को देवताओं, जिनके लिए यह कहा जा सकता है कि उनका प्रतिनिधित्व प्रतिवादी के रूप में किसी अनिच्छुक वादमित्र के

द्वारा किया जाना चाहिए, के हित के 'विरुद्ध' अनुतोषों के रूप में कोटिबद्ध नहीं किया जा सकता ।"

अन्य शब्दों में निर्मोही अखाड़ा का पक्षकथन यह है कि वह अकेले ही शिबायत के रूप में अपनी प्रकृति में देवता के हित का प्रतिनिधित्व करने का हकदार है, जो उसने वाद संख्या 3 में किया है । इसके अतिरिक्त वाद शिबायत की तरफ से कुप्रबंधन के किसी अभिकथन की अनुपस्थिति में देवता के नाम में वादमित्र द्वारा संस्थित नहीं कराया जा सकता, जैसाकि वाद संख्या 5 में किया गया है । इस पहलू की विस्तारपूर्वक जांच की जाएगी, जब वाद संख्या 5 की पोषणीयता का विश्लेषण किया जाएगा । इस प्रक्रम पर हमको डा. धवन, जिन्होंने निर्मोही अखाड़ा के शिबायती दावे, के आशय का भी उल्लेख करना चाहिए । यह छूट शून्य में विद्यमान नहीं रह सकती । इस दावे का प्रकथन केवल उस संदर्भ में किया जा सकता है, जिसने देवता, जिनका प्रतिनिधित्व शिबायत करने की ईप्सा करता है, की विद्यमानता को स्वीकार किया जाता है । अतः, डा. धवन के समक्ष एक विनिर्दिष्ट शंका प्रस्तुत की गई कि क्या परिसीमा के विवाद्यक से पूर्णतया स्वतंत्र होकर कोई छूट, जो उसकी तरफ से दी गई है, आवश्यक रूप से राम जन्मस्थान पर देवता की उपस्थिति की स्थिति के संबंध में किसी विधिक परिणाम के रूप में सामने आएगी । इस बाबत यह उल्लेख किया जाना चाहिए कि डा. धवन का उनके निवेदनों में उत्तर यह था कि राम चबूतरा पर देवता की उपस्थिति हिंदू श्रद्धालुओं के लिए उपासना के सुखाचार वाले अधिकार के बाबत परिकल्पित थी ताकि वे पूजन कर सकें और इस प्रयोजन के लिए बरामदे में पहुंच सकें ।

ड.3 उच्च न्यायालय के समक्ष विवाद्यक और निष्कर्ष

223. हमारे विश्लेषण के साथ आगे अग्रसर होने के पूर्व इस प्रक्रम पर यह आवश्यक है कि उन विवाद्यकों का उल्लेख किया जाए जिनको वाद संख्या 3 में विरचित किया गया था और उन पर उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों पर भी विचार किया जाए :–

विवाद्यक संख्या 1 – क्या विवादित स्थल पर जन्मभूमि का कोई मंदिर है, जिसमें मूर्तियां स्थापित हैं, जैसाकि वाद संख्या 3 के वादपत्र में पैरा 3 में अभिलिखित है ?

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – यह अभिनिर्धारित किया गया कि मूर्तियों को तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 की रात्रि के दौरान प्रथम बार मस्जिद के निर्मित भाग के भीतर चबूतरे पर रखा गया था ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – विवादित परिसर को उस रीति में मंदिर नहीं माना जा सकता, जिस रीति में वादियों द्वारा वाद संख्या 3 में दावा किया गया है । इसलिए, वाद संख्या 1 का उत्तर नकारात्मक में दिया गया ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – यह साबित करने के लिए कोई साक्ष्य उपस्थित नहीं है कि विवादित ढांचे, जिसमें प्राचीनकाल में मूर्तियों को स्थापित किया गया था, के भीतर निर्मोही अखाड़ा से संबंधित कोई मंदिर विद्यमान था ।

विवाद्यक संख्या 2 – क्या वादग्रस्त संपत्ति वाद संख्या 3 के वादी से संबंधित है ?

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – वह संपत्ति, जो वाद संख्या 3 में किए गए दावे की विषयवस्तु है, में भीतरी बरामदे का परिसर सम्मिलित है । इस बाबत स्वत्व को साबित किए जाने के प्रयोजनार्थ कोई दस्तावेजी साक्ष्य उपलब्ध नहीं है और न ही प्रतिकूल कब्जे को साबित करने के लिए कोई साक्ष्य उपलब्ध है ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वादी के विरुद्ध अभिनिर्धारित किया ।

विवाद्यक संख्या 3 – क्या वादियों ने 12 वर्ष से अधिक की अवधि तक कब्जे में बने रहने के द्वारा प्रतिकूल कब्जे के द्वारा स्वत्व अर्जित कर लिया है ?

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – वर्ष 1855 से पूर्व की अवधि के लिए प्रतिकूल कब्जे के प्रश्न को निर्णीत किए जाने की कोई आवश्यकता नहीं है ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – वादी के विरुद्ध अभिनिर्धारित किया ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वादी के विरुद्ध अभिनिर्धारित किया ।

विवाद्यक संख्या 4 – क्या वादी उक्त मंदिर के प्रबंधन और प्रभार के हकदार हैं ?

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – 'वादी के विरुद्ध अभिनिर्धारित किया गया' । मूर्तियों को तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 की मध्यवर्ती रात्रि में केंद्रीय गुंबद के नीचे रखा गया था । वादी, जिसने इस पक्षकथन को विवादित किया है, को केंद्रीय गुंबद के नीचे रखी गई मूर्तियों के शिबायत के रूप में मान्यता प्रदान नहीं की जा सकती, चूंकि इस बाबत कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है कि वह केंद्रीय गुंबद के नीचे भीतरी बरामदे में देवता की देखभाल करता था ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वादी के विरुद्ध अभिनिर्धारित किया ।

विवाद्यक संख्या 5 – क्या वादग्रस्त संपत्ति मस्जिद है, जिसको बाबरी मस्जिद के नाम से जाना जाता है और जिसका निर्माण बाबर द्वारा किया गया था ?

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – विवादित परिसर के निर्मित भाग को बाबर के आदेश के अंतर्गत मस्जिद के रूप में निर्मित किया गया था । यह बात तात्विक नहीं है कि इस मस्जिद का निर्माण मीर बाकी द्वारा कराया गया था या किसी अन्य द्वारा । तथापि, प्रत्यक्ष साक्ष्य द्वारा यह साबित नहीं हो सका है कि निर्मित भाग को सम्मिलित करते हुए विवादित परिसर का संबंध बाबर से था या किसी ऐसे व्यक्ति से था जिसने मस्जिद का निर्माण कराया । मात्र शिलालेख के आधार पर यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता कि भवन का निर्माण बाबर द्वारा या उसके आदेशों के अंतर्गत किया गया था या इसका निर्माण वर्ष 1528 में किया गया था ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – विवादित संपत्ति का निर्माण बाबर द्वारा किया गया ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – विवादित संपत्ति का निर्माण बाबर द्वारा किया गया ।

विवाद्यक संख्या 6 – क्या अभिकथित मस्जिद जिसको

सम्राट बाबर द्वारा सामान्य रूप से मुस्लिमों द्वारा नमाज के लिए समर्पित किया गया था और उसने इस मस्जिद को जनसाधारण के वक्फ़ संपत्ति बना दिया था ?

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता कि मस्जिद किसी अन्य की भूमि के ऊपर निर्मित किए जाने के कारण विधिमान्य मस्जिद नहीं थी ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – प्रत्यक्ष साक्ष्य, पारिस्थितिक या अन्य साक्ष्य के अभाव में विवाद्यक संख्या 6 को साबित नहीं किया जा सका और इसका उत्तर नकारात्मक में दिया जाता है ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – विवाद्यक संख्या 1 के साथ निर्णीत किया गया ।

विवाद्यक संख्या 7 (क) – क्या मुस्लिम वक्फ़ अधिनियम (1936 के अधिनियम संख्या 13) के अंतर्गत कोई अधिसूचना जारी की गई है, जिसके द्वारा वादग्रस्त संपत्ति को सुन्नी वक्फ़ घोषित किया गया ?

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – उत्तर नकारात्मक में दिया गया ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वाद संख्या 4 में निकाले गए निष्कर्षों के अनुसार ।

विवाद्यक संख्या 7 (ख) – क्या उक्त अधिसूचना अंतिम और बाध्यकारी है ? यदि ऐसा है, तो इसके प्रभाव ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – उत्तर नकारात्मक में दिया गया ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वाद संख्या 4 में निकाले गए निष्कर्षों के अनुसार ।

विवाद्यक संख्या 8 – क्या वादियों के अधिकार वाद फाइल होने के पहले 12 वर्ष की अवधि व्यतीत हो जाने के कारणवश निर्वापित (समाप्त) हो गए हैं ?

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – पक्ष संयुक्त कब्जे में हैं और इसलिए प्रतिकूल कब्जे के विवाद्यक को निर्णीत किया जाना आवश्यक नहीं था ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – वाद वर्ष 1959 में संस्थित कराया गया था और यह नहीं कहा जा सकता कि वादी विगत 12 वर्षों के दौरान भीतरी बरामदे के कब्जे में कभी नहीं रहे । न तो वादियों को इस बात को साबित किए जाने के भार से मुक्त किया गया है कि वे विवादित संपत्ति के स्वामी थे और न ही प्रतिवादियों ने इस बात को साबित किया है कि वादी 12 वर्षों की अवधि के दौरान कब्जे से बाहर बने रहे और वादियों ने प्रतिकूल कब्जे की अपेक्षाओं को पूर्ण कर दिया है । तद्नुसार, इस विवाद्यक का उत्तर नकारात्मक में दिया जाता है ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – उत्तर वाद संख्या 4 में निकाले गए निष्कर्षों के अनुसार वादी के विरुद्ध दिया गया ।

विवाद्यक संख्या 9 – क्या वाद समय के भीतर फाइल किया गया था ?

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – वाद परिसीमा के भीतर फाइल किया गया था ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – वाद परिसीमा अधिनियम की धारा के अनुच्छेदों 120 के अधीन परिसीमा द्वारा बाधित है । परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 47, 142 और 144 लागू नहीं होते थे ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वाद परिसीमा द्वारा बाधित है ।

विवाद्यक संख्या 10 (क) – क्या वाद धारा 80(ग) के अधीन सूचना न दिए जाने के कारण दूषित है ?

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – उत्तर वादियों के पक्ष में दिया गया ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – उत्तर वादियों के पक्ष में दिया गया ।

विवाद्यक संख्या 10 (ख) – क्या प्रतिवाद करने वाले प्रतिवादियों द्वारा उपरोक्त अभिवाक् किया जा सकता है ?

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – वादियों के पक्ष में उत्तर दिया गया ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वादियों के पक्ष में उत्तर दिया गया ।

विवाद्यक संख्या 11 – क्या वाद आवश्यक प्रतिवादियों के असंयोजन के कारण दूषित है ?

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – यद्यपि इस विवाद्यक पर विनिर्दिष्ट रूप से विचार नहीं किया गया है, फिर भी माननीय न्यायमूर्ति ने न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल द्वारा निकाले गए निष्कर्षों, जो उनके द्वारा स्वयं निकाले गए निष्कर्षों के असंगत है, के साथ सहमति व्यक्त की ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – बल न दिए जाने के कारण वादियों के पक्ष में उत्तर दिया गया ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वाद संख्या 4 में विवाद्यक संख्या 21 पर निकाले गए निष्कर्षों के निबंधनों के अनुसार निर्णीत ।

विवाद्यक संख्या 12 – क्या प्रतिवादी सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 35 के अधीन विशेष लागत के हकदार हैं ?

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – बल न दिए जाने के कारण वादियों के पक्ष में उत्तर दिया गया ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – उत्तर नकारात्मक में दिया गया ।

विवाद्यक संख्या 13 – कोई अन्य अनुतोष, यदि कोई हो, जिसके वादी हकदार है ?

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – तीनों पक्षों (मुस्लिम, हिंदू और निर्मोही अखाड़ा) में से प्रत्येक 1/3 भाग की सीमा तक संयुक्त स्वत्व और कब्जे की घोषणा का हकदार है और इस प्रभाव तक आरंभिक डिक्री पारित की जाती है ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – वाद संख्या 3 में वादी किसी भी अनुतोष के हकदार नहीं हैं । इसके बावजूद, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि बाहरी बरामदे में राम चबूतरा, सीता रसोई और भंडार के अंतर्गत आने वाले क्षेत्र को उत्तम स्वत्व के किसी दावे की अनुपस्थिति में निर्मोही अखाड़ा का भाग घोषित किया जाता है । इसके अतिरिक्त बाहरी बरामदे के अंतर्गत आने वाले खुले क्षेत्र का प्रयोग निर्मोही अखाड़ा द्वारा वाद संख्या 5 के वादियों के साथ किया जाएगा ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वाद खारिज किया जाता है और निर्मोही अखाड़ा किसी भी अनुतोष का हकदार नहीं है ।

विवाद्यक संख्या 14 – क्या वाद पोषणीय है, जैसाकि प्रारूपित किया गया है ?

न्यायमूर्ति एस. यू. खान – विवाद्यक को विनिर्दिष्ट रूप से निर्णीत नहीं किया गया । प्रकीर्ण निष्कर्ष – वे अपने (न्यायमूर्ति एस. यू. खान के) निर्णय में समाविष्ट किसी विपरीत बात के अध्यधीन रहते हुए न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल से सहमत हैं ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – यह अभिनिर्धारित किया गया कि वाद पोषणीय नहीं है । वादी 1898 की दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन संपत्ति के कुर्क हो जाने पर मजिस्ट्रेट के समक्ष आक्षेप फाइल कर सकते थे । वादी ने कोई आक्षेप फाइल नहीं किए या स्वत्व की किसी घोषणा की ईप्सा नहीं की, जिसकी अनुपस्थिति में सिविल न्यायाधीश वादी के रिसीवर द्वारा प्रभार हस्तगत किए जाने के लिए निर्देशित नहीं कर सकता था ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – यह विवाद्यक वादियों के पक्ष में निर्णीत किया जाता है ।

विवाद्यक संख्या 15 – क्या वादग्रस्त संपत्ति का सही मूल्यांकन किया गया है और पर्याप्त न्यायशुल्क का संदाय किया गया है ?

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – बल न दिए जाने के कारण वादियों के पक्ष में उत्तर दिया गया ।

विवाद्यक संख्या 16 – क्या वाद 1936 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13 की धारा 83 के अधीन सूचना न दिए जाने के कारण दूषित है ?

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – उत्तर नकारात्मक में दिया गया ।

विवाद्यक संख्या 17 – क्या वादी निर्मोही अखाड़ा बैरागियों के रामानंद संप्रदाय का पंचायती मठ है और यह एक धार्मिक

संप्रदाय है और जहां तक वाद का संबंध है, अपने रीति-रिवाजों के अनुसार अपनी धार्मिक आस्था का पालन करता है ? (माननीय उच्च न्यायालय के तारीख 23 फरवरी, 1996 के आदेश द्वारा संयोजन किया गया)

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – वादियों के पक्ष में उत्तर दिया गया ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा – वादियों के पक्ष में उत्तर दिया गया ।

ड.4 वाद संख्या 3 में परिसीमा

224. वाद संख्या 3 को तारीख 17 दिसंबर, 1959 को संस्थित कराया गया था । 1908 का परिसीमा अधिनियम वाद संस्थित कराए जाने की तारीख पर प्रवृत्त था । परिसीमा अधिनियम की धारा 3 उपबंधित करती है कि संस्थित कराया गया प्रत्येक वाद, फाइल की गई प्रत्येक अपील और प्रस्तुत किया गया प्रत्येक आवेदन इस अधिनियम की धारा 4 से 25 (दोनों धाराओं को सम्मिलित करते हुए) में समाविष्ट उपबंधों के अंतर्गत उपबंधित परिसीमा के भीतर फाइल न किए जाने पर खारिज कर दिया जाएगा । यदि अधिनियम की प्रथम अनुसूची में विहित परिसीमा की अवधि व्यतीत हो चुकी है, चाहे परिसीमा को प्रतिरक्षा के आधार का अवलंब न भी लिया गया हो । 1963 के परिसीमा अधिनियम की धारा 31(ख) उन वादों, अपीलों और आवेदनों की इस विधायन के उपयोजन से रक्षा करती है, जो इस अधिनियम के आरंभ होने की तारीख पर लंबित थे । इसके परिणामस्वरूप धारा 3 के प्रयोजनार्थ परिसीमा का विवाद्यक 1908 के परिसीमा अधिनियम द्वारा शासित होता है ।

उच्च न्यायालय ने दो के मुकाबले एक न्यायाधीश के विभाजन वाले अधिमत द्वारा अभिनिर्धारित किया कि वाद संख्या 3 परिसीमा द्वारा बाधित था, इस विवाद्यक से विसम्मत रहने वाले न्यायाधीश न्यायमूर्ति एस. यू. खान थे ।

225. 1908 के परिसीमा अधिनियम की अनुसूची के तीनों अनुच्छेदों का अवलंब लिया गया और विवाद्यक यह है कि इन दोनों अनुच्छेदों में से कौन सा अनुच्छेद लागू होगा । अनुच्छेद 47, 120 और 142 सुसंगत अनुच्छेद हैं । इन अनुच्छेदों को नीचे तालिका में उद्धृत किया गया है :–

वाद का वर्णन	परिसीमा की अवधि	वह समय, जिससे परिसीमा की अवधि आरंभ होगी
47. किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा, जिसको 1898 की दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत किसी अचल संपत्ति के कब्जेदार का सम्मान करने के लिए आदेश द्वारा बाध्य किया गया है ।	[तीन वर्ष]	मामले में अंतिम आदेश की तारीख
120. वाद, जिसके लिए इस अनुसूची में कहीं पर भी परिसीमा की कोई अवधि उपबंधित नहीं की गई है ।	[छह वर्ष]	जब वाद फाइल करने का अधिकार उद्भूत होता है ।
142. जब वादी, जब वह संपत्ति के कब्जे में हो, या तो उसे कब्जे से बेदखल कर दिया गया हो या उसने कब्जा छोड़ दिया हो, अचल संपत्ति के कब्जे के लिए वाद फाइल करता है ।	[बारह वर्ष]	कब्जे या कब्जा छोड़ देने की तारीख ।

सुसंगत तारीखें

226. इसके पहले कि हम परिसीमा के विवाद्यक पर विचार करें, यह आवश्यक है कि इस विवाद्यक से संबंधित सुसंगत तारीखों की पुनरावृत्ति की जाए, ये तारीखें इस प्रकार है :–

(i) तारीख 29 दिसंबर, 1949 को अपर नगर मजिस्ट्रेट द्वारा 1898 की दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन एक प्रारंभिक आदेश पारित किया गया था और इस आदेश के अधीन कुर्की का आदेश करते हुए रिसीवर की नियुक्ति की गई थी;

(ii) तारीख 5 जनवरी, 1950 को रिसीवर ने कुर्क संपत्तियों का प्रभार ले लिया था और उनकी एक सूची बनाई थी;

(iii) तारीख 16 जनवरी, 1950 को गोपाल सिंह विशारद द्वारा वाद संख्या 1 इस घोषणा की ईप्सा करते हुए संस्थित कराया गया कि वह मुख्य जन्मभूमि में मूर्तियों के निकट उपासना और प्रार्थना करने का हकदार है । इस वाद में उसी तारीख को एक अनंतरिम व्यादेश प्रदान किया गया था;

(iv) तारीख 19 जुलाई, 1950 को वाद संख्या 1 में पारित अनंतरिम व्यादेश को निम्नलिखित शब्दों में उपांतरित किया गया;

> "विपक्षियों को एतदद्वारा स्थाई व्यादेश द्वारा विवादित स्थल से प्रश्नगत मूर्तियों को हटाने और वर्तमान में की जा रही पूजा इत्यादि में मध्यक्षेप करने से प्रतिषिद्ध किया जाता है । तारीख 16 जनवरी, 1950 के आदेश के तद्नुसार उपांतरित किया जाता है ।"

(v) तारीख 3 मार्च, 1951 को तारीख 16 जनवरी, 1950 को पारित स्थाई व्यादेश, जिसे तारीख 19 जनवरी, 1950 को उपांतरित किया गया, की पुष्टि कर दी गई;

(vi) तारीख 30 जुलाई, 1953 को अपर नगर मजिस्ट्रेट ने धारा 145 के अधीन कार्यवाही में निम्नलिखित आदेश पारित किया –

> "सिविल न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष दांडिक न्यायालय पर बाध्यकारी होंगे । इस मामले में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन कार्यवाही आरंभ करने और साक्ष्य अभिलिखित किए जाने का कोई लाभ नहीं है, विशेष रूप से तब जब कोई स्थाई व्यादेश प्रभाव में है, चूंकि यह नहीं कहा जा सकता कि पक्षों के साक्ष्य अभिलिखित किए जाने के पश्चात् इस न्यायालय का निष्कर्ष क्या हो सकता है । संपत्ति प्रशासनिक दृष्टिकोण से पहले ही कुर्की के अधीन है और शांति भंग की कोई घटना घटित नहीं हो सकती ।
>
> अत: मैं आदेश देता हूं कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन पत्रावली अभिलेखागार को भेजी जाए और जब अंतरिम व्यादेश का आदेश रिक्त हो जाए, तो आगे की कार्यवाही के लिए पुन: मगाई जाए ।"

(vii) अपर नगर मजिस्ट्रेट तारीख 31 जुलाई, 1954 को निम्नलिखित निर्देश जारी किए :–

> "इस फाइल को नष्ट नहीं किया जा सकता, चूंकि यह निस्तारित फाइल नहीं है । आप यह रिपोर्ट कैसे प्रस्तुत कर सकते हैं कि इस फाइल को नष्ट कर दिया जाएगा ?"

(viii) 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 43, नियम 1(त) के अधीन तारीख 3 मार्च, 1951 के आदेश के विरुद्ध तारीख 26 अप्रैल, 1955 को फाइल की गई अपील को उच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया; और

(ix) तारीख 17 दिसंबर, 1959 को निर्मोही अखाड़ा द्वारा रिसीवर के विरुद्ध वाद संख्या 3 इस बाबत डिक्री पारित किए जाने के लिए संस्थित कराया गया कि वह मंदिर का प्रभार और प्रबंधन उनको हस्तगत करे ।

उच्च न्यायालय द्वारा निर्दिष्ट किए गए कारण

227. न्यायमूर्ति एस. यू. खान ने यह अभिनिर्धारित किए जाने के प्रयोजनार्थ निम्नलिखित कारण दर्शित किए कि वाद परिसीमा द्वारा बाधित नहीं :–

(i) प्रथमतः, अंतिम आदेश जो धारा 145 के अधीन कार्यवाही में तारीख 30 जुलाई, 1953 को पारित किया गया था (सिवाय 1970 में पारित आदेश के, जिसके द्वारा रिसीवर के पद पर नियुक्त तत्कालीन पदधारी की मृत्यु हो जाने के कारण उसको दूसरे रिसीवर द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था) । इस आदेश और तारीख 31 जुलाई, 1954 को मजिस्ट्रेट द्वारा पारित पश्चात्वर्ती आदेश से यह उपदर्शित होता है कि धारा 145 के अधीन कार्यवाही को न तो बंद किया गया था और न ही अंतिम किया गया था । उस स्थिति में, जब मजिस्ट्रेट या तो अंतरिम व्यादेश प्रदान करने वाले आदेश के विरुद्ध फाइल की गई अपील खारिज किए जाने के पश्चात् या किसी अन्य तारीख पर कोई अंतिम आदेश पारित करता, तो उस स्थिति में घोषणा के लिए वाद फाइल किए जाने की परिसीमा के प्रयोजनार्थ एक नया आरंभ बिंदु उपलब्ध हो जाता;

(ii) यदि यह अभिनिर्धारित कर दिया जाता कि वाद संख्या 3 परिसीमा द्वारा बाधित है, तो वाद संख्या 1, जिसे परिसीमा की अवधि के भीतर संस्थित कराया गया था, में परस्पर विरोधी पक्षों के अधिकार और हक निर्णीत किए जाते । वाद संख्या 1 में निर्मोही अखाड़ा के स्वत्व पर विनिश्चय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 146(1) के प्रयोजनार्थ पर्याप्त होगा;

(iii) तारीख 6 दिसंबर, 1992 को परिसर के निर्मित भाग का ढहाया जाना, संघ सरकार द्वारा विवादित परिसर और उसके साथ संलग्न क्षेत्र का अर्जन और उच्चतम न्यायालय द्वारा **डा. एम. इस्माइल फारुकी** बनाम **भारत संघ** (उपरोक्त) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिया गया विनिश्चय परिसीमा के प्रयोजनार्थ एक नया आरंभ बिंदु प्रदान करते हैं । यदि समस्त पक्षों को अनुतोष (सिवाय वाद संख्या 1 में वादी के) परिसीमा द्वारा बाधित था, तो भी उनके अधिकार अभी भी विद्यमान हैं । ढांचे को ध्वस्त किए जाने के कारण 1877 के विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 42 के अधीन घोषनात्मक वाद फाइल किए जाने के प्रयोजनार्थ नया वाद कारण प्राप्त हो गया;

(iv) दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन नियुक्त रिसीवर कुर्क की गई संपत्ति को अपने कब्जे में अनिश्चित काल तक नहीं रख सकता । इसलिए, इस मामले में उदार दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए, जिसकी अनुपस्थिति में अनिश्चितता सृजित हो जाएगी । जिस मामले में कुर्की के कारण कब्जे का दावा फाइल नहीं किया जा सकता, उसमें धारा 28 पक्षों के हितों को समाप्त नहीं कर सकती । इसके अतिरिक्त 1908 के परिसीमा अधिनियम की धारा 23 के अधीन निरंतर रूप से दोषपूर्ण कार्य को जारी रखे जाने का सिद्धांत लागू होता है और निर्मोही अखाड़े को निरंतर रूप से उनके प्रभार और प्रबंधन के अधिकार से इनकार किया जा रहा था; और

(v) किसी भी स्थिति में यद्यपि वाद परिसीमा द्वारा बाधित था, तो भी न्यायालय समस्त विवाद्यकों पर निर्णय पारित करने

के लिए बाध्य था । जैसाकि 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 14, नियम 2(1) द्वारा अपेक्षित है ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने यह अभिनिर्धारित किए जाने के प्रयोजनार्थ निम्नलिखित कारण प्रस्तुत किए कि वाद संख्या 3 परिसीमा द्वारा बाधित था :–

(i) वाद के लिए वादकारण भीतरी बरामदे का प्रभार रिसीवर द्वारा तारीख 5 जुलाई, 1950 को ले लिए जाने पर उद्भूत हुआ;

(ii) वाद संख्या 3 में अंतर्वलित विवाद भीतरी बरामदे के परिसर तक सीमित था । वादियों ने अपने अभिवचनों में न तो हक की घोषणा की ईप्सा की है और न ही किसी को अवैध रूप से बेदखल किए जाने के प्रयोजनार्थ दावा प्रस्तुत किया है । उनका दावा यह है कि नगर मजिस्ट्रेट ने मंदिर का प्रबंधन और प्रभार अवैध रूप से ग्रहण कर लिया था । नगर मजिस्ट्रेट ने धारा 145 के अधीन कुर्की का कानूनी आदेश पारित किया और इस कुर्की आदेश के मतावलंबन में भीतरी बरामदे का कब्जा रिसीवर को प्रदान कर दिया गया था । धारा 145 के अधीन पारित कुर्की आदेश वास्तविक स्वामी को कब्जे के अधिकार से वंचित नहीं कर सकता था किंतु अभिकथित रूप से रिसीवर स्वामी की तरफ से संपत्ति के कब्जे में था । इसलिए निर्मोही अखाड़े को बेदखल न किए जाने के कारण अनुच्छेद 142 लागू नहीं होता; और

(iii) अनुच्छेद 47 लागू नहीं होता । इसलिए परिसीमा का विवाद्यक का न्यायनिर्णयन अनुच्छेद 120 के संदर्भ में किया जाना अपेक्षित था । वाद अनुच्छेद 120 में विनिर्दिष्ट छह वर्ष की अवधि व्यतीत हो जाने के पश्चात् संस्थित कराया गया था और इसलिए परिसीमा द्वारा बाधित था । न्यायमूर्ति डी. बी. शर्मा ने अभिनिर्धारित किया कि वाद संख्या 3 में परिसीमा विनिर्धारित किए जाने के प्रयोजनार्थ अनुच्छेद 120 लागू होती है । वाद संख्या 3 तारीख 17 दिसंबर, 1959 को फाइल किया गया था । यह वाद वादकारण उद्भूत होने की छह वर्ष की अवधि के भीतर फाइल न किए जाने के कारण परिसीमा द्वारा बाधित था ।

निर्मोही अखाड़ा के निवेदन

228. वाद संख्या 3 में वादी के विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री एस. के. जैन ने परिसीमा के संबंध में निम्नलिखित निवेदन किए :–

I. **धारा 145 के अधीन कार्यवाहियों में कोई अंतिम आदेश पारित नहीं किया गया है । इसलिए 1908 के परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 47 के अधीन परिसीमा आरंभ नहीं होती –**

(i) वाद में वादकारण तारीख 5 जनवरी, 1950 को उद्भूत हुआ जब रिसीवर ने भीतरी बरामदे का प्रभार ग्रहण कर लिया;

(ii) तारीख 29 दिसंबर, 1949 की धारा 145 के अधीन पारित किया गया मजिस्ट्रेट का आदेश प्रारंभिक आदेश था और इस आदेश के द्वारा वादकारण गठित हुआ । तथापि, ऐसे किसी भी वाद के लिए परिसीमा केवल तब आरंभ होगी, जब धारा 145 के अधीन कार्यवाही में अंतिम आदेश पारित किया जाएगा । वर्तमान मामले में, जैसाकि मजिस्ट्रेट द्वारा तारीख 31 जुलाई, 1954 के आदेश में उल्लेख किया गया है, धारा 145 के अधीन कार्यवाही का निस्तारण नहीं हुआ है और इसलिए अभी तक अंतिम आदेश पारित नहीं किया गया है । धारा 145 के अधीन कार्यवाही लंबित है; और

(iii) वाद 1908 के परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 47 द्वारा शासित होता है । अनुच्छेद 47 के अधीन वाद के लिए 3 वर्षों की परिसीमा मामले में पारित अंतिम आदेश की तारीख से आरंभ होती है । अनुच्छेद 47 के अधीन दी गई सारणी के प्रथम स्तंभ में वाद का विवरण समाविष्ट होता है और इस वर्णन में उस व्यक्ति को निर्दिष्ट किया जाता है, जो दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत अचल संपत्ति के कब्जे के संबंध में पारित किसी आदेश द्वारा बाध्य होता है । अनुच्छेद के अधीन दी गई सारणी के तृतीय स्तंभ में वह समय विनिर्दिष्ट किया जाता है, जहां से परिसीमा आरंभ होती है और इस स्तंभ में अंतिम आदेश पारित किए जाने की तारीख से

परिसीमा के आरंभ का उल्लेख होता है । कोई वाद, जिसको प्रथम स्तंभ में कोटिबद्ध किया जाता है, वह उसी स्तंभ द्वारा शासित होगा और तृतीय स्तंभ में समाविष्ट शब्दों के प्रयोग से अप्रभावित रहेगा । परिसीमा अधिनियम परिसीमा की अवधि के 'पश्चात्' फाइल किए गए वादों को वर्जित करता है किंतु उन वादों को फाइल किए जाने को प्रवारित नहीं करता, जिनको परिसीमा की अवधि आरंभ हो जाने के 'पूर्व' संस्थित करा दिया गया ।

II. **निर्मोही अखाड़ा के प्रबंधन और प्रभार के 'आत्यंतिक' शेबायती अधिकारों से इनकार निरंतर रूप से किया जा रहा दोषपूर्ण कार्य है । 1908 के परिसीमा अधिनियम की धारा 23 को दृष्टि में रखते हुए प्रत्येक दिन एक नवीन वादकारण उद्भूत हुआ–**

(i) वाद संख्या 3 के लिए परिसीमा अनुच्छेद 142 द्वारा शासित होती है, चूंकि वादी को उनकी संपत्ति से बेदखल कर दिया गया था । अनुच्छेद 142 तभी लागू होता है, जब वादी संपत्ति के कब्जे में है और उसको कब्जे से बेदखल कर दिया गया है या उसके कब्जे का क्रम भंग हो गया है और वाद उस अचल संपत्ति के कब्जे के लिए फाइल किया जाता है । वाद संख्या 3 में वादीगणों के पास मूर्तियों और मंदिर के प्रबंधन और प्रभार का अधिकार था, चूंकि वे पूजन के दायित्व, यात्रियों की देखभाल और अन्य कर्तव्यों का निर्वहन कर रहे थे । पूजा करने का अधिकार अर्थात् शेबायती अधिकार अचल संपत्ति के कब्जे के साथ संबद्ध होते हैं । वादी ने संपत्ति में अपने सांपत्तिक हित को प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित निर्णयज विधियों का अवलंब लिया –

(क) अंगूर बाला मुलिक **बनाम** देवब्रत मुलिक [1951] एस. सी. आर. 1125 वाला मामला, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया कि शिबायत बंदोबस्ती वाली संपत्ति में कतिपय अधिकार या हित, जो आंशिक रूप से कम से कम मालिकाना अधिकार की प्रकृति रखते हैं, का उपभोग करता है; और

(ख) हिंदू धार्मिक बंदोबस्ती आयुक्त **बनाम** श्री लक्ष्मीन्द्र तीर्थ स्वामियार आफ श्री शिरुर मठ [1954] एस. सी. आर. 1005 वाले मामले, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया कि शिबायती अधिकारों में पद और संपत्ति, कर्तव्यों और व्यक्तिगत हित, दोनों के तत्व एक साथ मिश्रित होते हैं । महंत के पद की प्रकृति मालिकाना अधिकार की होती है, जो यद्यपि किसी सीमा तक असंगत होती है, फिर भी वास्तविक विधिक अधिकार वाली होती है ।

(ii) शिबायती अधिकारों को पुनर्स्थापित किए जाने के बाबत फाइल किया गया वाद कब्जा प्राप्ति और प्रबंधन की पुनर्स्थापना के लिए फाइल किया गया वाद होगा । इस मामले में अनुच्छेद 142, जो कब्जे की तारीख से 12 वर्ष की परिसीमा के लिए उपबंधित करता है, के प्रावधान आकर्षित होंगे;

(iii) वादकारण तारीख 5 जनवरी, 1949 को उद्भूत हुआ, जिसके द्वारा निर्मोही अखाड़ा को शिबायत के रूप में उसके आत्यंतिक अधिकार प्रदान किए जाने से इनकार कर दिया गया था और उनको यह अधिकार प्रदान किए जाने से आज तक इनकार किया जा रहा है । वादी के अधिकारों में स्वतंत्र रूप से भोग और प्रार्थना के प्रबंधन के अधिकार में व्यवधान परिसीमा अधिनियम की धारा 23 के अधीन निरंतर रूप से कारित किया जा रहा दोषपूर्ण कार्य है और इस कार्य में किया जा रहा प्रत्येक व्यवधान एक नवीन वादकारण सृजित करता है । सर सेठ हुकूम चंद्र **बनाम** महाराज बहादुर सिंह (1933) 38 एल. डब्ल्यू. 306 (पी.सी.) वाले मामले में माननीय प्रिवी कौंसिल द्वारा दिए गए निर्णय का अवलंब लिया गया, जिसमें प्रार्थना और पूजन के कार्यों में व्यवधान को निरंतर रूप से किया जा रहा दोषपूर्ण कार्य अभिनिर्धारित किया गया है ।

III. 1908 के परिसीमा अधिनियम का अनुच्छेद 120 अवशिष्ट उपबंध है और यह उपबंध तब लागू होता है, जब कोई

अन्य उपबंध, अनुच्छेद 47 और 142 को सम्मिलित करते हुए, उपलब्ध न हो । समन्वय का सिद्धांत भी लागू होता है और धारा 145 के अधीन पारित तारीख 29 दिसंबर, 1949 के प्रारंभिक आदेश का समन्वय तारीख 26 अप्रैल, 1955 को पारित आदेश के साथ हो गया, जिसके द्वारा वाद संख्या 1 में पारित अंतरिम व्यादेश को उच्च न्यायालय द्वारा मान्य ठहराया गया था –

(i) यह निवेदन (बिना स्वीकार करते हुए) इस उपधारणा पर आधारित है कि अनुच्छेद 47 और 142 लागू नहीं होते और अनुच्छेद 120 लागू होता;

(ii) समन्वय के सिद्धांत को दृष्टि में रखते हुए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन कार्यवाहियों में तारीख 29 दिसंबर, 1949 को पारित अपर नगर मजिस्ट्रेट का आदेश वाद संख्या 1 की अपील में उच्च न्यायालय द्वारा यथास्थिति कायम रखे जाने के प्रयोजनार्थ पारित अंतरिम आदेश में तारीख 26 अप्रैल, 1955 को पारित आदेश के साथ समन्वित हो गया । अतः, वादी का वाद फाइल करने का अधिकार तारीख 26 अप्रैल, 1955 को उद्भूत हुआ । वाद संख्या 3, जो तारीख 17 दिसंबर, 1959 को फाइल किया गया था 6 वर्ष की परिसीमा अवधि के भीतर था । इस बाबत इस न्यायालय द्वारा पारित निम्नलिखित विनिश्चयों का अवलंब लिया गया था –

(क) चंडी प्रसाद **बनाम** जगदीश प्रसाद (2004) 8 एस. सी. सी. 724 वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि समन्वय का सिद्धांत के द्वारा यह अनुध्यात किया जाता है कि किसी विनिर्दिष्ट समय-बिंदु पर एक ही विषयवस्तु के संबंध में एक से अधिक क्रियान्वयनशील डिक्रियां नहीं हो सकती । जब अपीली न्यायालय द्वारा डिक्री पारित की जाती है, तो विचारण न्यायालय के डिक्री इस तथ्य के बावजूद कि अपीली न्यायालय विचारण न्यायालय द्वारा पारित डिक्री की पुष्टि करती है, उपांतरित करती या उसको पलटती है,

अपीली न्यायालय के डिक्री के साथ समन्वित हो जाती है; और

(ख) एस. एस. राठौर **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य (1989) 4 एस. सी. सी. 582 वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि प्राथमिक न्यायालय द्वारा पारित डिक्री अपील में पारित डिक्री में समन्वित हो जाती है ।

IV. रिसीवर से कब्जे की वापसी के लिए फाइल किए गए वाद में परिसीमा का प्रश्न कभी उद्भूत नहीं हो सकता और ऐसे वाद परिसीमा द्वारा कभी भी बाधित नहीं हो सकते –

(i) जहां तक किसी व्यक्ति, जिससे कब्जा लिया गया था, की संपत्ति रिसीवर के कब्जे के अधीन रहने का प्रश्न है, ऐसे मामले में परिसीमा का प्रश्न कभी भी उद्भूत नहीं हो सकता;

(ii) ऐसी संपत्ति अनंत काल तक विधिक अभिरक्षा के अधीन रहती है और यह न्यायालय का दायित्व है कि वह ऐसी संपत्ति के स्वत्व का न्यायनिर्णयन करे और ऐसे वाद को परिसीमा द्वारा बाधित वाद के रूप में खारिज नहीं किया जा सकता ।

V. जहां तक अंत:कालीन लाभ की हकदारी विनिर्धारित किए जाने का प्रश्न है, ऐसे मामले में स्वत्व के प्रश्न का न्यायनिर्णयन किया जाना होगा और रिसीवर द्वारा भूमि के वास्तविक स्वामी को कब्जा प्रदान किया जाना होगा –

चूंकि संपत्ति रिसीवर के नियंत्रणाधीन है, उस संपत्ति से अंत:कालीन लाभ के लिए फाइल किया गया वाद संपत्ति के वास्तविक स्वामी द्वारा फाइल किया जा सकता है और ऐसे वाद में उद्भूत होने वाला कोई लाभ निरंतर रूप से उपलब्ध रहने वाले वादकारण को उत्पन्न करेगा ।

VI. वादी का यह दावा है कि निर्मोही अखाड़ा जन्मस्थान और

मूर्तियों का शिबायत है । इसी कारणवश 1989 के वाद संख्या 5 का परिसीमा के भीतर होना अभिनिर्धारित किया गया था अर्थात् देवता को शाश्वत अवयस्क माना गया था और इस कारणवश वादी का वाद परिसीमा द्वारा बाधित नहीं हो सकता ।

229. वादियों की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री के. परासरन ने श्री एस. के. जैन द्वारा किए गए निवेदनों का खंडन किया और परिसीमा और वाद संख्या 3 की पोषणीयता के संबंध में निम्नलिखित निवेदन किए :–

I. **धारा 145 के अधीन मजिस्ट्रेट का आदेश शांति को सुनिश्चित किए जाने के प्रयोजनार्थ पुलिस की शक्तियों का प्रयोग करते हुए पारित किया गया आदेश है और यह आदेश संपत्ति के ऊपर स्वत्व या कब्जे का विनिर्धारण नहीं करता है । चूंकि ऐसा कोई आदेश किसी भी पक्ष को कब्जा दिए जाने के प्रयोजनार्थ आशयित नहीं किया जा सकता, इसलिए निर्मोही अखाड़े द्वारा धारा 145 के अधीन कार्यवाहियों में पारित आदेश के कारण उनको बेदखल किए जाने का प्रश्न नहीं उठाया जा सकता –**

i. धारा 145 के अधीन पारित आदेश शांति को सुनिश्चित किए जाने के प्रयोजनार्थ पुलिस की शक्तियों के प्रयोग के प्रयोजनार्थ पारित आदेश होता है । यह आदेश केवल शांति भंग को प्रवारित किए जाने के प्रयोजनार्थ पारित किया जाता है और ऐसे आदेश द्वारा किसी संपत्ति के स्वत्व के संबंध में पक्षों के अधिकारों का विनिर्धारित नहीं किया जाता । धारा 145 के अंतर्गत कार्यवाही किसी संपत्ति के अधिकारयुक्त स्वामी के अधिकारों को मात्र स्थिर या संरक्षित करती है । कार्यकारी कृत्यों के प्रयोग में किसी मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश कभी भी दोषपूर्ण कार्य या क्षति कारित करने वाला कार्य नहीं हो सकता । किसी सिविल न्यायालय द्वारा पारित किसी आदेश को कभी भी किसी वादकारण को उद्भूत करने वाले 'दोषपूर्ण कार्य' के रूप में विचारित नहीं किया जा सकता । यह निर्णय करने की शक्ति केवल किसी न्यायिक प्राधिकारी को होती है कि क्या सिविल न्यायालय द्वारा की गई कार्रवाई

दोषपूर्ण है । स्वत्व और कब्जे से संबंधित प्रश्न अनन्य रूप से सिविल न्यायालय की अधिकारिता के अंतर्गत आने वाले मामले होते हैं और धारा 145 के अधीन मजिस्ट्रेट द्वारा पारित किया गया आदेश सिविल न्यायालय की अधिकारिता को वर्जित नहीं कर सकता;

ii. धारा 145 के अंतर्गत कार्यवाही भिन्न होती हैं और वे मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश के पश्चात् पक्षों को स्वत्व या कब्जे के लिए सिविल वाद फाइल करने से वर्जित नहीं करती । सिविल न्यायालय की अधिकारिता में धारा 145 के अधीन मजिस्ट्रेट के आदेश द्वारा कटौती नहीं की जा सकती और पक्षों द्वारा सिविल कार्यवाही का अवलंब स्वतंत्र रूप से लिया जा सकता है । इस न्यायालय द्वारा पारित निम्नलिखित विनिश्चयों का अवलंब लिया गया –

(i) भिनका **बनाम** चरण सिंह [1959] (सप्ली.) 2 एस. सी. आर. 798 वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि मजिस्ट्रेट की अधिकारिता धारा 145 के अधीन मात्र यह निर्णीत किए जाने तक सीमित होती है कि क्या दोनों पक्षों में से कोई पक्ष प्रारंभिक आदेश की तारीख पर विवादित भूमि के कब्जे में था और यदि ऐसा था, तो इसके प्रभाव । यह आदेश मात्र किसी विनिर्दिष्ट तारीख पर किसी पक्ष के वास्तविक कब्जे की घोषणा करता है और यह आदेश कब्जा प्रदान किए जाने या किसी पक्ष को कब्जा लेने के लिए प्राधिकृत किए जाने के लिए आशयित नहीं होता;

(ii) झुम्मामल **उर्फ** देवनदास **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य (1988) 4 एस. सी. सी. 452 वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि धारा 145 के अधीन पारित आदेश द्वारा मात्र किसी पक्ष को कब्जा प्रदान किए जाने के तथ्य पर विचार किया जाता है । यह आदेश विवादित संपत्ति के कब्जे में बने रहने के लिए कोई स्वत्व प्रदान नहीं करता । इसलिए किसी असफल

पक्ष को केवल सिविल न्यायालय में नियमानुसार फाइल किए गए वाद में अनुतोष प्राप्त करना चाहिए । कोई पक्ष घोषणा के लिए वाद फाइल कर सकता है और कब्जे के संबंध में बेहतर अधिकार साबित कर सकता है । सिविल न्यायालय को उस निष्कर्ष से भिन्न निष्कर्ष निकालने की अधिकारिता प्राप्त होती है, जिस पर मजिस्ट्रेट धारा 145 के अधीन कार्यवाहियों में पहुंचे, और

(iii) देवकौर **बनाम** शिव प्रसाद सिंह [1965] 3 एस. सी. आर. 655 वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि संपत्ति के स्वत्व की घोषणा के प्रयोजनार्थ फाइल किए गए वाद में, जब संपत्ति धारा 145 के अधीन कुर्क की जा चुकी हो, यह आवश्यक नहीं होता है कि कब्जा प्रदान किए जाने के लिए अनुतोष की ईप्सा की जाए ।

iii. वाद संख्या 3 में श्री एस. के. जैन ने यह अभिकथित करते हुए निवेदन किया कि धारा 145 के अधीन कार्यवाहियों को अंतिमता प्राप्त नहीं हुई है और इसलिए यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि अनुच्छेद 47 के अधीन परिसीमा आरंभ हो चुकी है । निर्मोही अखाड़ा धारा 145 के अधीन कार्यवाही के बावजूद स्वत्व और कब्जे के लिए स्वतंत्र रूप से वाद फाइल कर सकता था ।

II. 1908 के परिसीमा अधिनियम की धारा 3 उपबंधित करती है कि परिसीमा की अवधि के पश्चात् संस्थित कराया गया प्रत्येक वाद खारिज कर दिया जाएगा । उच्चतम न्यायालय केवल परिसीमा के आधार पर ही अपीलों का निस्तारण कर सकता है । यद्यपि विचारण न्यायालय को समस्त विवाद्यकों को निर्णीत करना होता है, किंतु उच्चतम न्यायालय ऐसा करने के लिए बाध्य नहीं है यदि वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि वाद परिसीमा द्वारा बाधित है –

i. यशवंत देवराव देशमुख **बनाम** वालचंद्र रामचंद्र कोठारी

[1950] एस. सी. आर. 852 वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय का अवलंब लिया गया, जिसमें यह मताभिव्यक्ति की गई कि साम्या के नियमों को ऐसे मामलों में लागू नहीं किया जा सकता, जिनमें केवल वे आधार उद्भूत होते हैं, जिन पर परिसीमा के ठहराव या निलंबन को विनिर्दिष्ट करते हुए निश्चायक कानूनी उपबंध उपस्थित हों । यद्यपि न्यायालय आवश्यक रूप से कपट को रोके जाने या उनका मुकाबला करने के प्रयोजनार्थ दक्षता रखते हैं, फिर भी इस बात को ध्यान में रखा जाना चाहिए कि परिसीमा के कानून ठहराव के कानून होते हैं ।

III. उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय को अपास्त किया जाना है । डिक्री अभिवचनों की विधि के विपरीत है । निर्मोही अखाड़ा द्वारा भूमि के विभाजन के लिए किसी प्रार्थना की ईप्सा नहीं की गई थी । उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश न्यायहित को दृष्टि में रखते हुए पारित नहीं किया गया बल्कि इससे न्याय की हानि हुई है ।

IV. 1908 के परिसीमा अधिनियम की धारा 28 किसी व्यक्ति के सारभूत अधिकारों का निर्वापन करती है । तद्नुसार, यदि कोई पक्ष परिसीमा के विवाद्यक पर विफल हो जाता है, तो वह अन्य सभी सारभूत विवाद्यकों पर भी विफल हो जाता है और इसलिए यह न्यायालय वाद संख्या 3 में निर्मोही अखाड़ा को कोई अनुतोष प्रदान नहीं कर सकता ।

V. अनुच्छेद 120 निर्मोही अखाड़ा द्वारा फाइल किए गए वाद पर भी लागू होता है । परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 142 और 144 लागू नहीं होते । यदि एक बार परिसीमा आरंभ हो जाती है, तो उसको रोका नहीं जा सकता –

(i) राजा राजगण महाराजा जगतजीत सिंह **बनाम** राजा प्रताप बहादुर सिंह (1942) 2 मद्रास ला जर्नल 384 वाले मामले में माननीय प्रिवी कौंसिल द्वारा दिए गए विनिश्चय का अवलंब लिया गया, जिसमें परिसीमा की कानूनी अवधि के

संबंध में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अनुच्छेद 47 लागू नहीं होता, चूंकि धारा 145 के अधीन मजिस्ट्रेट द्वारा कब्जे के लिए कोई आदेश पारित नहीं किया गया है । स्वत्व की घोषणा के लिए फाइल किए गए वाद में अनुच्छेद 142 और 144 लागू नहीं होते और वाद अनुच्छेद 120 द्वारा शासित होता है ।

230. वाद संख्या 4 में वादी के विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल डा. राजीव धवन ने वाद संख्या 3 की परिसीमा के संबंध में निम्नलिखित निवेदन किए :–

I. **वह अनुतोष जिसकी ईप्सा निर्मोही अखाड़ा द्वारा वाद संख्या 3 में की गई है, प्रबंधन और प्रभार के लिए है । तथापि, उन्होंने अपनी वादपत्र में यह दावा किया है कि जन्मस्थान 'उनसे संबंधित है और सदैव संबंधित रहा है' और किसी विनिर्दिष्ट संदर्भ में अस्पष्ट भाव में इन शब्दों का प्रयोग का अर्थान्वयन 'कब्जा', 'स्वामित्व' और 'सारगर्भित स्वत्व' के रूप में समझा जा सकता है –**

(i) निर्मोही अखाड़ा द्वारा ईप्सित अनुतोष केवल रामलला की मूर्तियों की प्रबंधन और प्रभार के संबंध में था । निर्मोही अखाड़ा का पक्षकथन 1898 की दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन पारित आदेश द्वारा शिबायती अधिकारों से वंचित किए जाने पर आधारित है । दावा राज्य के विरुद्ध भोगाधिकार के बाबत कब्जे और देवता को सेवाएं समर्पित किए जाने के लिए फाइल किया गया । शब्द जैसेकि 'से संबंधित' का लचीला अर्थ होता है । इस संबंध में इस न्यायालय द्वारा पारित निम्नलिखित विनिश्चयों का अवलंब लिया गया :–

(क) 'से संबंधित' के अर्थान्तर्गत चर्चा के संबंध में लेट नवाब सर मीर उस्मान अली खान **बनाम** कमिश्नर ऑफ वेल्थ टैक्स, हैदराबाद (1986) (सप्ली.) एस. सी. सी. 700 वाला मामला; और

(ख) वादपत्र में किए गए स्पष्ट प्रकथनों पर चर्चा

और सत्य अर्थान्वयन को समझे जाने के प्रयोजनार्थ वादपत्र को पढ़े जाने के संबंध में राजा मोहम्मद अमीर अहमद खान **बनाम** म्युनिसिपल बोर्ड, सीतापुर ए. आई. आर. 1965 एस. सी. 1923 वाला मामला ।

(ii) निर्मोही अखाड़ा ने अपने वादपत्र के पैरा 2 में दावा किया था कि जन्मस्थान उससे संबंधित है और सदैव उसी से संबंधित रहा है । वादपत्र के पैरा 4 में निर्मोही अखाड़ा ने आगे दावा किया है कि मंदिर वादी के कब्जे में रहा है, तथापि वादी ने अपने लिखित कथन में स्वामित्व और कब्जे के दावे का उल्लेख किया है ।

(iii) 'संबंधित है' या 'से संबंधित है' शब्दों का अर्थान्वयन कब्जे के संदर्भ में लिया जा सकता है जैसेकि 'कब्जा', 'स्वामित्व' और 'सारगर्भित स्वत्व' । 'संबंधित है' या 'से संबंधित है' शब्द कला से संबंधित शब्द नहीं है और इन शब्दों का कोई निश्चायक अर्थ नहीं होता । इनका अर्थान्वयन किसी भी संदर्भ में किया जा सकता है ।

II. **निर्मोही अखाड़ा 'संबंधित है' शब्द का प्रयोग हक के दावे और परिसीमा के वर्जन के प्रयोजनार्थ कर रहा है । 'संबंधित है' शब्द को उसका सामान्य अर्थ प्रदान किया जाना चाहिए । यदि निर्मोही अखाड़ा स्वयं के लिए हक का दावा करता है, तो वह देवता के दावे के समर्थन में होगा । निर्मोही अखाड़ा केवल आनुषंगिक अधिकारों का दावा कर सकता है :–**

(i) निर्मोही अखाड़ा ने मात्र मूर्तियों की सेवा का दावा किया है और उसने मूर्तियों पर कोई दावा नहीं किया है । निर्मोही अखाड़ा कर्तव्य का दावा कर रहा है न कि स्वामित्व और हक के अधिकार का । तद्नुसार केवल अनुच्छेद 120 लागू हो सकता है; और

(ii) यूनाइटेड किंग्डम में न्यास की विधि के समान भारत में भी शिबायत को कोई स्वामित्व या हक प्राप्त नहीं होता । शिबायत मूर्ति की संपत्ति का स्वामी नहीं होता ।

III. **निर्मोही अखाड़ा ने धारा 145 के अधीन कार्यवाहियों का प्रयोग यह दलील देने के प्रयोजनार्थ किया है कि उनको शिबायत के आत्यंतिक अधिकार प्रदान किए जाने से इनकार करने की सरकार की कार्रवाई निरंतर रूप से जारी दोष है :–**

(i) धारा 145 के अंतर्गत कार्यवाही हक या स्वामित्व के दावों के विनिर्धारण के लिए की गई कार्यवाही नहीं होती । किसी ने निर्मोही अखाड़ा को कब्जे और हक के लिए घोषणात्मक वाद फाइल करने से प्रवारित नहीं किया था; और

(ii) अभिवचनों में वर्णित विनिर्दिष्ट तारीख, जब वादकारण उद्भूत हुआ, 5 जनवरी, 1950 थी । विधि ने मजिस्ट्रेट के आदेश के अंतर्गत कब्जा लेने कहां पर मध्यक्षेप किया है, छह वर्षों की अवधि उसी तारीख से आरंभ हुई और निरंतर रूप से जारी दोष का अवलंब लिए जाने की कोई आवश्यकता नहीं थी क्योंकि कार्रवाई पूर्ण हो गई थी और उसके लिए अनुतोष कहीं अन्यत्र प्राप्त किए जा सकते थे ।

उन निवेदनों, जो विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल द्वारा इस विवाद्यक के संबंध में किए गए कि वाद संख्या 3 परिसीमा द्वारा वर्जित है, का उल्लेख करते हुए हम अब 1898 की दंड प्रक्रिया संहिता और 1908 के परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेदों के विभिन्न उपबंधों का विश्लेषण करने के लिए अग्रसर होते हैं ।

धारा 145 के अंतर्गत कार्यवाही की प्रकृति और परिधि

231. मजिस्ट्रेट ने 1898 की दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन पारित तारीख 29 दिसंबर, 1949 के आदेश द्वारा संपत्ति कुर्क की थी । वाद संख्या 3 के वादी ने अभिकथित किया है कि वादकारण तारीख 5 जनवरी, 1950 को उद्भूत हुआ जब रिसीवर ने संपत्ति का प्रभार ग्रहण किया और उनको मंदिर का प्रभार और प्रबंधन प्रदान किए जाने से इनकार किया गया ।

232. धारा 145 को 1898 की संहिता के अध्याय 12 में शीर्षक 'अचल संपत्ति से संबंधित विवाद' के अंतर्गत सम्मिलित किया गया था । धारा 145 में यह प्रावधान समाविष्ट हैं, जो इस प्रकार है :–

"(1) जहां कभी किसी जिला मजिस्ट्रेट, उपखंड मजिस्ट्रेट या प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट का पुलिस रिपोर्ट से या अन्य इत्तिला पर समाधान हो जाता है कि उसकी स्थानीय अधिकारिता के अंदर किसी भूमि या जल या उसकी सीमाओं से संबद्ध ऐसा विवाद विद्यमान है, जिससे प्रशांति भंग होना संभाव्य है, तब वह अपना ऐसा समाधान होने के आधारों का कथन करते हुए और ऐसे विवाद से संबद्ध पक्षकारों से यह अपेक्षा करते हुए लिखित आदेश देगा कि वे विनिर्दिष्ट तारीख और समय पर स्वयं या प्लीडर द्वारा उसके न्यायालय में हाजिर हों और विवाद की विषयवस्तु पर वास्तविक कब्जे के तथ्य के बारे में अपने-अपने दावों का लिखित कथन पेश करें ।

(2) इस धारा के प्रयोजनों के लिए 'भूमि' या 'जल' पद के अंतर्गत भवन, बाजार, मीन क्षेत्र, फसलें, भूमि की अन्य उपज और ऐसी किसी संपत्ति के भाटक या लाभ भी हैं ।

(3) इस आदेश की एक प्रति की तामील इस संहिता द्वारा समनों की तामील के लिए उपबंधित रीति से ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों पर की जाएगी, जिन्हें मजिस्ट्रेट निर्दिष्ट करे और कम से कम एक प्रति विवाद की विषयवस्तु पर या उसके निकट किसी सहजदृश्य स्थान पर लगाकर प्रकाशित की जाएगी ।

(4) मजिस्ट्रेट तब विवाद की विषयवस्तु को पक्षकारों में से किसी के भी कब्जे में रखने के अधिकार के गुणागुण या दावे प्रति निर्देश किए बिना उन कथनों का, जो पेश किए गए हैं, परिशीलन करेगा, पक्षकारों को सुनेगा और ऐसे सभी साक्ष्य लेगा, जो उनके द्वारा प्रस्तुत किए जाएंगे, उस साक्ष्य के प्रभाव पर विचार करेगा, ऐसा अतिरिक्त साक्ष्य (यदि कोई हो) लेगा जैसा वह आवश्यक समझे और यदि संभव हो तो यह विनिश्चय करेगा कि क्या उन पक्षकारों में से कोई ऊपर उल्लिखित आदेश की तारीख पर विषयग्रस्त संपत्ति के कब्जे में था :

परंतु यह तब जबकि यदि मजिस्ट्रेट को यह प्रतीत होता है कि किसी पक्ष को उक्त आदेश की तारीख के पूर्व दो माह की

अवधि के भीतर बलपूर्वक और दोषपूर्ण ढंग से बेदखल कर दिया गया है :

परंतु यह भी तब जबकि यदि मजिस्ट्रेट का यह विचार है कि मामला आकस्मिक प्रकृति का है, तो वह किसी भी समय-बिंदु पर विवाद की विषय-ग्रस्त संपत्ति को इस धारा के अधीन विनिश्चय के लंबन के दौरान कुर्क कर सकता है ।

(5) इस धारा की कोई बात, हाजिर होने के लिए ऐसे अपेक्षित किसी पक्षकार को या किसी अन्य हितबद्ध व्यक्ति को यह दर्शित करने से नहीं रोकेगी कि कोई पूर्वोक्त प्रकार का विवाद वर्तमान नहीं है या नहीं रहा है और ऐसी दशा में मजिस्ट्रेट अपने उक्त आदेश को रद्द कर देगा और उस पर आगे की सब कार्यवाहियां रोक दी जाएंगी, किंतु उपधारा (1) के अधीन मजिस्ट्रेट का आदेश ऐसे रद्दकरण के अधीन रहते हुए अंतिम होगा ।

(6) यदि मजिस्ट्रेट यह विनिश्चय करता है कि पक्षकारों में से एक का उक्त विषयवस्तु पर ऐसा कब्जा था या उपधारा (4) के परंतुक के अधीन ऐसा कब्जा माना जाना चाहिए, तो वह यह घोषणा करने वाला कि ऐसा पक्षकार उस पर तब तक कब्जा रखने का हकदार है जब तक उसे विधि के सम्यक् अनुक्रम में बेदखल न कर दिया जाए और या निषेध करने वाला कि जब तक ऐसी बेदखली न कर दी जाए तब तक ऐसे कब्जे में विघ्न न डाला जाए, आदेश जारी करेगा और जब तक उपधारा (4) के परंतुक के अधीन कार्यवाही करता है तब उस पक्षकार को, जो बलात् और सदोष बेकब्जा कर दिया गया है, कब्जा लौटा सकता है ।

(7) जब किसी ऐसी कार्यवाही के पक्षकार की मृत्यु हो जाती है, तब मजिस्ट्रेट मृत पक्षकार के विधिक प्रतिनिधि को कार्यवाही का पक्षकार बनवा सकेगा और फिर जांच चालू रखेगा और यदि इस बारे में कोई प्रश्न उत्पन्न होता है कि मृत पक्षकार ऐसी कार्यवाही के प्रयोजन के लिए विधिक प्रतिनिधि कौन है, तो मृत पक्षकार का प्रतिनिधि होने का दावा करने वाले सब व्यक्तियों को उस कार्यवाही में पक्षकार बना लिया जाएगा ।

(8) यदि मजिस्ट्रेट की यह राय है कि उस संपत्ति की, जो इस धारा के अधीन उसके समक्ष लंबित कार्यवाही में विवाद की विषयवस्तु है, कोई फसल या अन्य उपज शीघ्रतया और प्रकृत्या क्षयशील है, तो वह ऐसी संपत्ति की उचित अभिरक्षा या विक्रय के लिए आदेश दे सकता है और जांच के समाप्त होने पर ऐसी संपत्ति के या उसके विक्रय के आगमों के व्ययन के लिए ऐसा आदेश दे सकता है, जो वह ठीक समझे ।

(9) यदि मजिस्ट्रेट ठीक समझे तो वह इस धारा के अधीन कार्यवाहियों के किसी प्रक्रम में पक्षकारों में से किसी के आवेदन पर किसी साक्षी के नाम समन यह निदेश देते हुए जारी कर सकता है कि वह हाजिर हो या कोई दस्तावेज या चीज पेश करे ।

(10) इस धारा की कोई बात धारा 107 के अधीन कार्यवाही करने की मजिस्ट्रेट की शक्तियों का अल्पीकरण करने वाली नहीं समझी जाएगी ।"

धारा 145 मजिस्ट्रेट की निवारक अधिकारिता की एक शाखा के रूप में मान्यता प्राप्त है । धारा 145(1) का अवलंब मजिस्ट्रेट के इस समाधान के आधार पर लिया जा सकता है कि 'कोई विवाद शांति भंग कारित होने की संभाव्यता के आधार पर विद्यमान हो सकता है .....।' यह उपबंध भूमि या जल या उसकी सीमाओं, जिनके परिणामस्वरूप शांति भंग हो सकती है, के कब्जे के संबंध में विवादों से संबंधित होता है । मजिस्ट्रेट का कार्य हक, हक के प्रश्न पर विचार करना नहीं होता बल्कि कब्जे के पक्षों के मध्य स्थिति की आकस्मिकता को देखते हुए शांति बनाए रखना होता है । मजिस्ट्रेट 'वास्तविक कब्जे' के दावों के समर्थन में पक्षों से उनके कब्जे के बाबत लिखित कथन की अपेक्षा के लिए सशक्त होता है । ऐसा आदेश पक्षों पर समन के रूप में तामील किया जाता है । मजिस्ट्रेट को इस तथ्य को सुनिश्चित करने के प्रयोजनार्थ कि आदेश की तारीख पर कौन सा पक्ष कब्जे में था, उन कथनों का परिशीलन करना, पक्षों को सुनना और साक्ष्य का मूल्यांकन करना होता है । 'मजिस्ट्रेट इस बाबत विनिर्धारण कर सकता है, यदि ऐसा करना संभव हो । इसके अतिरिक्त मजिस्ट्रेट विवाद की विषयवस्तु को पक्षकारों में से किसी के भी कब्जे में रखने के अधिकार के गुणागुण या दावे के

प्रति निदेश किए बिना' आदेश की तारीख पर कब्जे के तथ्य के बारे में विनिर्धारण करता है । ये शब्द यह उपदर्शित करते हैं कि मजिस्ट्रेट परस्पर विरोधी कब्जे में होने के अधिकारों या परस्पर विरोधी दावों के गुणागुण का निर्णय या न्यायनिर्णयन नहीं करता । मजिस्ट्रेट केवल इस बाबत विनिर्धारण के लिए संबद्ध होता है कि आदेश की तारीख पर कौन कब्जे में था । यदि कब्जा आदेश की तारीख के दो माह के भीतर दोषपूर्ण ढंग से ले लिया गया है, तो कब्जे से बेदखल किए गए व्यक्ति को कब्जे वाला व्यक्ति माना जाएगा । मजिस्ट्रेट आपात स्थिति के मामलों में विनिश्चय के लंबन के दौरान विवाद की विषयवस्तु को कुर्क कर सकता है । वह अंतिम कार्रवाई, जिसको धारा 145 के अधीन अनुध्यात किया गया है, दंडात्मक नहीं है, बल्कि निवारक है और इस प्रयोजनार्थ जब तक कि किसी सक्षम न्यायालय द्वारा विधि के अनुक्रम में कोई अंतिम या औपचारिक न्यायनिर्णयन नहीं कर दिया जाता, मात्र अनंतिम होती है । अतः, पक्षों के भूत, वर्तमान और भविष्य के अधिकारों को प्रभावित करने वाली किसी भी कार्रवाई को इस उपबंध के अंतर्गत अनुध्यात नहीं किया गया है ।

233. मजिस्ट्रेट ने 1898 की दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन पारित तारीख 29 दिसंबर, 1949 के आदेश द्वारा संपत्ति को कुर्क कर लिया वाद संख्या 3 के वादियों ने अभिकथित किया है कि वादकारण तारीख 5 जनवरी, 1950 को उद्भूत हुआ जब रिसीवर ने संपत्ति का प्रभार ग्रहण किया और उनको मंदिर के प्रभार और प्रबंधन से वंचित कर दिया गया ।

234. इस न्यायालय ने धारा 145 के अधीन कार्यवाहियों की प्रकृति और परिधि का विश्लेषण निम्नलिखित मामलों में किया है :–

> (i) भिनका **बनाम** चरण सिंह [1959] (सप्ली.) 2 एस. सी. आर. 798 वाले मामले में प्रत्यर्थी ने विवादित भूमि के 'उसकी अपनी भूमि होने के' बाबत दावा किया था, जबकि अपीलार्थियों का दावा यह था कि वे जिस भूमि के कब्जे में हैं, उसके वंशानुगत किराएदार हैं । मजिस्ट्रेट ने धारा 145 के अधीन कार्यवाही आरंभ की और विवादित भूमि को कुर्क कर दिया और अपीलार्थियों को निर्देशित किया कि वे कार्यवाहियों के लंबन के दौरान भूमि का

कब्जा सुपुर्दगीदार के कब्जे में दे दें । मजिस्ट्रेट ने जांच के उपरांत यह निष्कर्ष निकाला कि अपीलार्थी कब्जे में बने रहने के हकदार हैं, जब तक कि उनको विधि के सम्यक् अनुक्रम में निष्कासित न किया जाए । तत्पश्चात्, प्रत्यर्थियों ने राजस्व न्यायालयों के समक्ष वाद फाइल किया । इन कार्यवाहियों से माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील उद्भूत हुई । माननीय न्यायालय के समक्ष विचारार्थ अनेक विवाद्यकों में से एक विवाद्यक यह था कि क्या अपीलार्थियों ने धारा 145 के उपबंधों के अनुसार कब्जा लिया था । न्यायमूर्ति सुब्बा राव ने तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ की तरफ से निर्णय पारित करते हुए यह अभिनिर्धारित किया –

> "मजिस्ट्रेट संहिता की धारा 145(6) के अधीन यह घोषणा करते हुए आदेश जारी करने के लिए प्राधिकृत है कि कोई पक्ष भूमि के कब्जे का हकदार है, जब तक कि उसको विधि की सम्यक् प्रक्रिया का पालन करते हुए उस भूमि से निष्कासित न कर दिया जाए । मजिस्ट्रेट से यह आशा नहीं की जा सकती कि वह किसी पक्ष के भूमि पर कब्जे के बाबत स्वत्व या अधिकार को निर्णीत करे, किंतु उससे स्पष्ट रूप से यह आशा की जाती है कि वह विधि की सम्यक् प्रक्रिया का पालन करते हुए इस प्रश्न को निर्णीत करे । उसकी अधिकारिता का आधार शांति भंग की आशंका पर आधारित है और वह इस उद्देश्य के साथ पक्षों के अधिकारों को ध्यान में रखते हुए अस्थायी आदेश पारित करता है, जिसको विधि द्वारा उपबंधित तरीके में चुनौती दी जा सकती है और उस चुनौती का निस्तारण किया जा सकता है । उस आदेश की अवधि किसी सिविल न्यायालय द्वारा डिक्री पारित किए जाने और निष्कासन का आदेश पारित किए जाने के साथ ही समाप्त हो जाती है और सिविल न्यायालय द्वारा पारित आदेश दांडिक न्यायालय द्वारा पारित आदेश का स्थान ले लेता है । प्रिवी कौंसिल ने दीनोमोनी चौधरानी **बनाम** ब्रोजो मोहिनी चौधरानी, [(1901) एल. आर. 29 आई. ए. 24, 33] वाले मामले में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन

पारित आदेशों के प्रभाव को स्पष्टत: अभिकथित किया है, जो इस प्रकार है –

> 'ये आदेश मात्र पुलिस आदेश हैं, जो शांति भंग को रोके जाने के प्रयोजनार्थ पारित किए जाते हैं । इन आदेशों के द्वारा स्वत्व के किसी भी प्रश्न का निर्णय नहीं किया जाता ...' ।

अत: हम अभिनिर्धारित करते हैं कि पक्षों के अधिकारों को ध्यान में रखते हुए कब्जे के संबंध में मजिस्ट्रेट द्वारा पारित अस्थायी आदेश व्यक्ति को अधिनियम की धारा 180 के अधीन वाद का प्रतिरोध करने के लिए समर्थ नहीं बना सकता ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

(ii) आर. एच. भूटानी **बनाम** मिस मनी जे. देसाई [1969] 1 एस. सी. आर. 80 वाले मामले में अपीलार्थी ने प्रथम प्रतिवादी के साथ उसके स्वामित्व वाले एक कमरे के अधिभोग के प्रयोजनार्थ लाइसेंस पर दिए जाने और उसका कब्जे के त्याग का एक करार किया था । जब दोनों पक्षों के मध्य प्रतिकर में बढ़ोतरी के संबंध में विवाद उद्भूत हुआ तब प्रथम प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी को कमरे से निष्कासित किए जाने और उसका कब्जा द्वितीय और तृतीय प्रत्यर्थियों को हस्तगत किए जाने की ईप्सा की । तत्पश्चात् अपीलार्थी ने धारा 145 के अधीन आवेदन फाइल किया और मजिस्ट्रेट ने कार्यवाही आरंभ की । जब कार्यवाही लंबित थी, तभी प्रत्यर्थी ने सिविल वाद फाइल कर दिया । मजिस्ट्रेट ने यह निष्कर्ष निकाला कि अपीलार्थी केबिन के वास्तविक कब्जे में था और उसको बलपूर्वक बेदखल किया गया था । उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण याचिका में मजिस्ट्रेट के आदेश को अपास्त कर दिया गया और यह अभिनिर्धारित किया गया कि मजिस्ट्रेट ने धारा 145 के अधीन प्रदत्त शक्तियों की परिधि को भंग किया है । उच्च न्यायालय के आदेश को इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई और इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय के आदेश को अपास्त कर

दिया और मजिस्ट्रेट के आदेश को पुनर्स्थापित कर दिया । न्यायमूर्ति जे. एम. शेलत ने इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ की तरफ से निर्णय पारित करते हुए धारा 145 के अधीन कार्यवाहियों की परिधि पर विचार निम्नलिखित शब्दों में किया –

> "8. <u>नि:संदेह रूप से धारा 145 का उद्देश्य शांतिभंग को प्रवारित करना है</u> और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पक्षों को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए जाने के द्वारा शीघ्र अनुतोष उपलब्ध कराना है <u>और इस बात को सुनिश्चित करना है कि उन पक्षों में से कौन वास्तविक कब्जे में था और यथास्थिति को बनाए रखना है जब तक कि उनके अधिकारों को किसी सक्षम न्यायालय द्वारा विनिर्धारित न कर दिया जाए... धारा 145 के अधीन जांच इस प्रश्न तक सीमित होती है कि पक्षों के अधिकारों को विचार में लाए बिना आरंभिक आदेश पारित किए जाने की तारीख पर वास्तविक कब्जे में कौन था</u> ।"
>
> (अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

(iii) शांति कुमार पांडा **बनाम** शकुंतला देवी, (2004) 1 एस. सी. सी. 438 वाले मामले में पक्षों के मध्य एक दुकान के संबंध में विवाद था । अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई एक शिकायत के आधार पर धारा 145 के अधीन कार्यवाही आरंभ की गई और मजिस्ट्रेट ने संपत्ति को कुर्क कर दिया । प्रत्यर्थी, जिसने दावा किया कि वह विवाद की विषयवस्तु वाली संपत्ति में हितबद्ध है, को इस कार्यवाही में पक्ष बनाए जाने की अनुज्ञा प्रदान नहीं की गई । धारा 145 के अधीन अंतिम आदेश अपीलार्थी के पक्ष में पारित कर दिया गया । इस आदेश के विरुद्ध फाइल की गई पुनरीक्षण याचिकाएं खारिज कर दी गईं । तत्पश्चात् प्रत्यर्थी ने सिविल वाद फाइल किया और एक व्यादेश प्राप्त कर लिया । तथापि, व्यादेश को जिला न्यायालय द्वारा इस आधार पर रिक्त कर दिया गया कि चूंकि धारा 145 के अंतर्गत कार्यवाही अपीलार्थी के पक्ष में समाप्त हो चुकी थी, इसलिए जब तक कि मजिस्ट्रेट द्वारा पारित

आदेश को सिविल न्यायालय द्वारा पारित डिक्री द्वारा अतिष्ठित नहीं कर दिया जाता, विचारण न्यायालय द्वारा जारी व्यादेश न्यायसंगत नहीं था और जब संपत्ति 'विधि अभिरक्षा' में थी, तो कोई व्यादेश जारी नहीं किया जा सकता था । उच्च न्यायालय ने जिला न्यायालय के आदेश को पलट दिया । तत्पश्चात् उच्च न्यायालय के आदेश को इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई । इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने अपील को खारिज कर दिया और धारा 145 के अधीन कार्यवाहियों की प्रकृति पर विचार किया । न्यायमूर्ति जे. एम. शेलत ने न्यायालय की तरफ से निर्णय पारित करते हुए अभिनिर्धारित किया –

> "10. संहिता की धारा 145/146 के अधीन कार्यवाही को अर्धसिविल, अर्धन्यायिक प्रकृति की कार्यवाही या कार्यकारी या पुलिस कार्रवाई अभिनिर्धारित किया गया है । इन उपबंधों का प्रयोजन संपत्ति के बाबत कब्जे के प्रश्न पर विवाद करने वाले पक्षों के मध्य विवाद के निपटारे के लिए मजिस्ट्रेट के समक्ष विवाद को प्रस्तुत किए जाने के द्वारा तीव्र और संक्षिप्त अनुतोष उपलब्ध कराना है ताकि शांतिभंग को प्रवारित किया जा सके । मजिस्ट्रेट आरंभिक आदेश को निर्दिष्ट करते हुए या उक्त तारीख से अगले दो माह के भीतर, जैसाकि धारा 145 की उपधारा (4) के परंतुक में निर्दिष्ट किया गया है, विवाद का संज्ञान लेते हुए स्वयं को इस प्रश्न के विनिर्धारण तक सीमित रखेगा कि विवाद करने वाला कौन सा पक्ष कब्जे में है और कब्जे के संबंध में यथास्थिति को बनाए रखेगा जब तक कि किसी सक्षम न्यायालय, जिसको सिविल अधिकारों के न्यायनिर्णयन को निर्णीत करने की सक्षमता प्राप्त हो, द्वारा कब्जे की हकदारी के प्रश्न का विनिर्धारण न कर दिया जाए, जिसको कार्यकारी मजिस्ट्रेट निर्णीत नहीं कर सकता । कार्यकारी मजिस्ट्रेट विवाद का संज्ञान नहीं लेगा यदि उस विवाद में स्वामित्व या कब्जे के अधिकार का प्रश्न निर्दिष्ट किया गया हो और मात्र कब्जे का प्रश्न निर्दिष्ट न किया गया हो ....।"

न्यायालय ने निम्नलिखित मताभिव्यक्ति में मजिस्ट्रेट के आदेश और सिविल न्यायालय की अधिकारिता के मध्य अंतरबंधन पर विचार किया –

> "15. यह सुस्थापित हो चुका है कि किसी दांडिक न्यायालय द्वारा पारित कोई विनिश्चय सिविल न्यायालय को बाध्य नहीं करता जबकि सिविल न्यायालय द्वारा पारित विनिश्चय दांडिक न्यायालय पर बाध्यकारी होता है (देखें – सरकार द्वारा साक्ष्य पर लिखित पुस्तक, पंद्रहवां संस्करण पृष्ठ 845) । संहिता की धारा 145 के अधीन पारित विनिश्चय सुसंगत होता है और यह दर्शित किए जाने के प्रयोजनार्थ साक्ष्य में ग्राह्य होता है –
>
> (i) किसी विशिष्ट संपत्ति के संबंध में विवाद था;
>
> (ii) यह विवाद विशिष्ट पक्षों के मध्य था;
>
> (iii) इस विवाद के कारण धारा 145(1) के अधीन आरंभिक आदेश या धारा 146(1) के अधीन कुर्की का आदेश किसी विनिर्दिष्ट तारीख पर पारित किया गया; और
>
> (iv) मजिस्ट्रेट इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि दोनों पक्षों में से एक पक्ष आरंभिक आदेश पारित किए जाने की तारीख पर विवादित संपत्ति के कब्जे में था या उसके किसी भाग के कब्जे में था । मजिस्ट्रेट द्वारा अभिलिखित कारण या उनके द्वारा निकाले गए अन्य निष्कर्ष सुसंगत नहीं हैं और सक्षम न्यायालय के समक्ष साक्ष्य में ग्राह्य नहीं हैं और सक्षम न्यायालय कब्जे के प्रश्न पर भी मजिस्ट्रेट द्वारा निकाले गए निष्कर्षों द्वारा बाध्य नहीं हैं । यद्यपि, जहां तक पक्षों के मध्य मुकदमेबाजी का संबंध है, मजिस्ट्रेट का आदेश कब्जे के संबंध में साक्ष्य होगा । मजिस्ट्रेट द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष न्यायालय को बाध्य नहीं करते । सक्षम न्यायालय को अधिकारिता प्राप्त है और वह कब्जे के प्रश्न पर भी कार्यपालक

मजिस्ट्रेट द्वारा निकाले गए निष्कर्ष से असंगत निष्कर्ष निकालने में भी न्यायानुमत होगा ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39 के अधीन सिविल न्यायालय की अंतर्वर्ती अधिकारिता के अंतर्गत भी बाध्यकारी नहीं माना जाएगा –

"22. ... सिविल न्यायालय उस आदेश का भी सम्मान करेगा और कार्यपालक मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश के असंगत अंतरिम इंतजाम वाले निष्कर्ष पर पहुंचने में अनिच्छुक होगा । तथापि, यह अभिनिर्धारित किया जाना संभव नहीं है कि सिविल न्यायालय को कार्यपालक मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश के असंगत व्यादेश का आदेश पारित करने की अधिकारिता नहीं होती । यदि अधिकारिता है तो भी उसका प्रयोग नियमित रूप से नहीं बल्कि अपवाद स्वरूप किया जा सकता है । ऐसे भी मामले हो सकते हैं जिनमें कार्यपालक मजिस्ट्रेट के आदेश को बिना अधिकारिता के, स्पष्ट रूप से गलत या परस्पर-विरोधी निष्कर्ष समाविष्ट करने वाले आदेश के रूप में दर्शित किया जा सकता हो । उदाहरणार्थ यह संभव है कि मजिस्ट्रेट ने कोई ऐसा आदेश पारित किया हो जिसके द्वारा दो माह की अवधि के पूर्व कब्जे से बेदखल किए गए पक्ष का कब्जे में होना प्रतीत कर लिया गया हो । ऐसे भी मामले हो सकते हैं जिनमें कार्यपालक मजिस्ट्रेट द्वारा उसके समक्ष प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के आधार पर पारित किए गए आदेश के बावजूद सक्षम न्यायालय प्रस्तुत की गई सामग्री के आधार पर यह अभिनिर्धारित करने के लिए आनत हो गई हो कि दोनों पक्षों में से एक पक्ष को प्रथमदृष्ट्या वादग्रस्त संपत्ति के कब्जे में बने रहने के प्रयोजनार्थ अत्यधिक मजबूत मामला बनता है या जहां एक पक्ष का संपत्ति के कब्जे में बना रहना पूर्णतया

> अनुचित और अन्यायपूर्ण होगा, जैसाकि कार्यपालक मजिस्ट्रेट द्वारा आदेशित किया गया है । ऐसी अपवादिक परिस्थितियों में सक्षम न्यायालय (जो सामान्यतया सिविल न्यायालय होगा) को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन कार्यपालक मजिस्ट्रेट द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों और की गई घोषणा के विपरीत व्यादेश का आदेश पारित करने की अधिकारिता होगी । संहिता की धारा 146 के अधीन पारित किया गया आदेश उस परिमाण की समस्या प्रस्तुत नहीं करेगा, जब तक संपत्ति कुर्की के अधीन है और रिसीवर के कब्जे में है, तब तक सिविल न्यायालय सुविधापूर्वक इस बात का परीक्षण कर सकता है कि क्या यह न्यायसंगत और समीचीन होगा कि क्या उसी रिसीवर द्वारा की गई कुर्की को जारी रखा जाए या किसी अन्य रिसीवर की नियुक्ति की जाए या सिविल वाद के लंबन के दौरान कोई अन्य अंतरिम इंतजाम किया जाए ।"
>
> (अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

(iv) सुरिन्दर पाल कौर **बनाम** सत्यपाल, (2015) 13 एस. सी. सी. 25 वाले मामले में **शांति कुमार पांडा** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का अवलंब लिया गया । न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा (जो तत्कालीन मुख्य न्यायमूर्ति थे) ने दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ की तरफ से निर्णय पारित करते हुए यह अभिनिर्धारित किया –

> "10. ... विधि की यह सुस्थापित स्थिति है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन कार्यवाहियों में की गई मताभिव्यक्तियां सक्षम न्यायालय को उसके समक्ष आरंभ की गई किसी विधिक कार्यवाही में बाध्य नहीं करतीं ।"

235. धारा 145 के अंतर्गत की गई कार्यवाहियों के अधिकार किसी पक्ष के भूमि के कब्जे के संबंध में स्वत्व या अधिकार को निर्णीत किए जाने के लिए तात्पर्यित नहीं होती । धारा 145 के अधीन कार्यवाहियों में कुर्क की गई संपत्ति 'विधि अभिरक्षा' में होती है । इसलिए, यह आवश्यक नहीं है कि किसी पक्ष, जो कब्जे में नहीं है और इसलिए वह कब्जा देने

की स्थिति में नहीं है, से कब्जा सुनिश्चित किया जाए । न्यायालय ने कुर्की के अधीन संपत्ति का विश्लेषण निम्नलिखित विनिश्चयों के आधार पर किया :–

(i) देवकौर **बनाम** शिव प्रसाद सिंह, [1965] 3 एस. सी. आर. 655 वाले मामले में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने अभिनिर्धारित किया कि धारा 145 के अधीन कुर्की 'विधि अभिरक्षा' होती है । अपील वर्ष 1947 में अपीलार्थियों द्वारा घोषणा के लिए फाइल किए गए वाद से उद्भूत हुई थी कि प्रत्यर्थियों ने कतिपय विलेखों के अधीन किसी संपत्ति का हक या स्वत्व अर्जित कर लिया है और यह विलेख अप्रवर्तनीय और व्यर्थ हैं । वाद को विचारण न्यायालय द्वारा डिक्री पारित कर दिया गया किंतु अपील में उच्च न्यायालय ने डिक्री को अपास्त कर दिया । उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि चूंकि अपीलार्थी वाद फाइल किए जाने की तारीख पर संपत्ति के कब्जे में नहीं थे, इसलिए उनका वाद विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 42 के परंतुक के अधीन विफल होने योग्य है चूंकि वे प्रत्यर्थियों से कब्जे की प्राप्ति के अनुतोष की ईप्सा का दावा करने में विफल रहे हैं । विवादित संपत्ति वाद की तारीख पर मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 145 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए कुर्क की जा चुकी थी और किसी भी पक्ष के कब्जे में नहीं थी । इस न्यायालय के समक्ष जो विवाद्यक उद्भूत हुआ यह था कि क्या अपीलार्थी कुर्की को दृष्टि में रखते हुए उनके द्वारा फाइल किए गए वाद में उनको कब्जा दिलाए जाने का अनुतोष प्राप्त करने की ईप्सा कर सकते थे । तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ की तरफ से निर्णय पारित करते हुए न्यायमूर्ति ए. के. सरकार ने अभिनिर्धारित किया –

"4. हमारे विचार में किसी संपत्ति, जब वह संपत्ति संहिता की धारा 145 के अधीन कुर्क हो जाती है, के स्वत्व की घोषणा के लिए फाइल किए गए वाद में यह आवश्यक नहीं होता कि कब्जा दिलाए जाने के लिए किसी अन्य अनुतोष की ईप्सा की जाए । यदि तथ्य यह है कि मजिस्ट्रेट ऐसी किसी कुर्की की स्थिति में उस पक्ष की तरफ से कब्जा धारण करता

है, जिसको वह अंततः कब्जे में पाता है, तो हमारे विचार में यह असुसंगत होगा । तथापि, इस प्रश्न के संबंध में कि क्या मजिस्ट्रेट वास्तव में ऐसा करता है कि नहीं, वर्तमान मामले में किसी विचार को व्यक्त किया जाना अनावश्यक है ।

5. प्राधिकारियों ने स्पष्टतः दर्शित किया है कि जहां प्रतिवादी कब्जे में नहीं है और वादी को कब्जा देने की स्थिति में भी नहीं है, तो संपत्ति के स्वत्व की घोषणा के लिए फाइल किए गए किसी वाद में वादी के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह कब्जे का दावा करे । [देखें – सुंदर सिंह मल्लाह सिंह सनातन धर्म हाई स्कूल ट्रस्ट **बनाम** मैनेजिंग कमेटी, सुंदर सिंह मल्लाह सिंह राजपूत हाई स्कूल, (1957) एल. आर. 65 आई. ए. 106] वाला मामला । अब यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी कुर्की के पश्चात् कब्जे में नहीं थे और वे अपीलार्थियों को कब्जा हस्तगत करने की स्थिति में भी नहीं थे । मजिस्ट्रेट किसी की तरफ से कब्जे में रहा हो, इससे कोई अंतर नहीं पड़ता और वह वास्तव में वाद का पक्ष भी नहीं था । यह मत व्यक्त करना आवश्यक है कि नवाब हुमायूं बेगम **बनाम** नवाब शाह मुहम्मद खान, ए. आई. आर. 1943 प्रिवी कौंसिल 94 वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 42 के परंतुक द्वारा अनुध्यात अन्य अनुतोष केवल प्रतिवादी के विरुद्ध ईप्सित है । यहां पर हम यह कहना चाहते हैं कि के. सुन्दरेसा अय्यर **बनाम** सर्वजन सोकियाबिल विरधी निधि लिमिटेड, (1939) आई. एल. आर. मद्रास 986 वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जब संपत्ति विधि अभिरक्षा में थी, तो कब्जे का दावा किया जाना आवश्यक नहीं था । इसमें कोई संदेह नहीं कि संहिता की धारा 145 के अधीन कुर्की के अंतर्गत आने वाली संपत्ति विधि अभिरक्षा में होती है । इन मामलों से यह स्पष्टतः साबित होता है कि अपीलार्थियों के लिए यह आवश्यक नहीं था कि वे कब्जे का दावा करते ।"

(ii) **शांति कुमार पांडा** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने धारा 145/146 के अधीन मजिस्ट्रेट के आदेश के प्रभाव को, जब सक्षम अधिकारिता वाले किसी न्यायालय के समक्ष विधिक कार्यवाहियां संस्थित कराई जाती हैं, शासित करने वाले विधिक सिद्धांतों को सूत्रबद्ध किया –

(1) 'सक्षम न्यायालय' शब्दों को, जैसाकि संहिता की धारा 146 की उपधारा (1) में प्रयोग किया गया है, का आवश्यकत: अर्थ केवल सिविल न्यायालय से नहीं है । सक्षम न्यायालय ऐसा न्यायालय होता है, जिसको उस संपत्ति, जो किसी कार्यपालक मजिस्ट्रेट के समक्ष कार्यवाहियों की विषयवस्तु होती है, के कब्जे के बाबत हकदारी के संबंध में पक्षों के स्वत्व या अधिकारों के प्रश्न का विनिर्धारित करने की अधिकारिता से संबंधित सक्षमता प्राप्त होती है ।

(2) कोई पक्ष, जो धारा 145(1) के अधीन किसी आदेश द्वारा असफल घोषित कर दिया जाता है, किसी सक्षम न्यायालय के समक्ष सफल पक्ष के विरुद्ध विवादित संपत्ति के संबंध में कब्जे की उसकी हकदारी को साबित किए जाने के प्रयोजनार्थ कार्यवाहियां आरंभ करेगा । सामान्यत:, कब्जे के अधिकार के अनुतोष की ईप्सा किया जाना समुचित होगा । संहिता की धारा 146(1) के अधीन कुर्की हो जाने के परिणामस्वरूप किसी सक्षम न्यायालय के समक्ष आरंभ की गई विधिक कार्यवाहियों में यह आवश्यक नहीं होता कि कब्जे के अधिकार के अनुतोष की ईप्सा की जाए । चूंकि संपत्ति के संबंध में यह अभिनिर्धारित कर दिया गया है कि वह उस पक्ष की तरफ से मजिस्ट्रेट की विधिक अभिरक्षा में है, जो न्यायालय के समक्ष अंतत: सफल होगा, इसलिए यदि केवल कब्जे की हकदारी के संबंध में अधिकारों के विनिर्धारण की ईप्सा की गई है, तो यह पर्याप्त होगा । ऐसा वाद कब्जे के अनुतोष की ईप्सा न किए जाने के कारण दूषित नहीं होगा ।

(3) किसी दांडिक न्यायालय द्वारा दिया गया विनिश्चय सिविल न्यायालय को बाध्य नहीं करता, जबकि सिविल

न्यायालय द्वारा दिया गया विनिश्चय दांडिक न्यायालय की बाध्यता है । संहिता की धारा 145/146 के अधीन कार्यवाहियों में कार्यपालक मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश दांडिक न्यायालय द्वारा पारित आदेश होता है और वह भी संक्षिप्त जांच पर आधारित आदेश । सक्षम न्यायालय के समक्ष अंतर्वर्ती प्रक्रम पर इस आदेश का सम्मान होना चाहिए और इसको महत्व भी दिया जाना चाहिए । अधिकारों के अंतिम न्यायनिर्णयन के प्रक्रम, जो न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए साक्ष्य का प्रक्रम होगा, पर मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश साक्ष्य के अनेक घटकों में से एक घटक होगा ।

(4) न्यायालय अंतरिम व्यादेश या अंतरिम इंतजाम का ऐसा आदेश जारी करने में अनिच्छुक होगा, जो कार्यपालक मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश के असंगत हो । तथापि, हमारा ऐसा कहने का आशय मात्र यह है कि न्यायालय द्वारा किसी कार्यपालक मजिस्ट्रेट द्वारा अपनी अधिकारिता के भीतर पारित किए गए तात्कालिक/आपातकालिक आदेशों के लिए विवेकपूर्ण और सम्मानजनक ढंग से पारित आदेश द्वारा विवेकाधिकार के प्रयोग पर सावधानी या संयम के नियम का पालन किया जाना; और निश्चित रूप से न्यायालय की शक्ति पर किसी प्रकार का अवरोध सृजित न किया जाना । न्यायालय को कार्यपालक मजिस्ट्रेट के आदेश के असंगत अनंतरिम व्यादेश के आदेश को सम्मिलित करते हुए अंतरिम आदेश पारित करने की अधिकारिता प्राप्त होती है । न्यायालय को अधिकारिता प्राप्त है किंतु उसका प्रयोग नियम के रूप में नहीं किया जाएगा बल्कि अपवाद के रूप में किया जाएगा । यहां तक कि अनंतरिम आदेश पारित किए जाने के प्रक्रम पर वह पक्ष जो कार्यपालक मजिस्ट्रेट के समक्ष असफल हो गया था, न्यायालय के समक्ष सामग्री प्रस्तुत कर पाने की स्थिति में प्रथमदृष्ट्या मजबूत मामला प्रस्तुत कर पाने में सफल हो जाएगा, यदि वह यह प्रदर्शित कर पाता है कि कार्यपालक मजिस्ट्रेट द्वारा निकाले गए निष्कर्ष बिना

> अधिकारिता, स्पष्टत: दूषित या स्वयं असंगत थे, जिस मामले में या इसी प्रकार के अन्य मामलों में न्यायालय अपने कारणों और समाधान को अभिलिखित करने के पश्चात् ऐसा आदेश पारित करता है, जो कार्यपालक मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश के असंगत है या उससे सहमति नहीं रखता । न्यायालय का आदेश अंतिम हो या अंतर्वर्ती, दोनों पक्षों में से एक पक्ष के पक्ष में यह घोषित करने का प्रभाव रखेगा कि वह पक्ष कब्जे का हकदार है और धारा 145 की उपधारा (6) के अर्थान्तर्गत कार्यपालक मजिस्ट्रेट के समक्ष सफल पक्ष को वहां से निष्कासित कर देगा ।
>
> (अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

उपरोक्त सूत्र आवश्यक रूप से उन सिद्धांतों का पुन: कथन है, जो न्यायालय की निर्णयज विधि की संगत पंक्ति से उद्भूत होते हैं [देखें – **झुम्मामल** उर्फ **देवनदास** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1]]

236. जब किसी सक्षम न्यायालय के समक्ष कब्जे की घोषणा के लिए कोई वाद संस्थित कराया जाता है, तो धारा 145 के अधीन कार्यवाहियां जारी नहीं रहेंगी । न्यायालय ने विधि की उपरोक्त प्रतिपादना का विश्लेषण निम्नलिखित मामलों में किया :–

(i) अमरेश तिवारी **बनाम** लालता प्रसाद दुबे, (2000) 4 एस. सी. सी. 440 वाले मामले में न्यायमूर्ति एस. एन. वरीयावा ने इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ की तरफ से निर्णय पारित करते हुए यह अभिनिर्धारित किया –

> "12. … इस विषयवस्तु पर विधि को रामसुमेर पुरी महंत **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य, [(1985) 1 एस. सी. सी. 427 = (1985) एस. सी. सी. (क्रि.) 98] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय द्वारा स्थिरीकृत कर दिया गया है । इस मामले में जो अभिनिर्धारित किया गया, वह निम्नलिखित है (एस. सी. सी. पृष्ठ 428-29 पैरा 2) –

[1] (1988) 4 एस. सी. सी. 452.

'जब कोई सिविल प्रकृति की मुकदमेबाजी किसी संपत्ति के संबंध में लंबित होती है, जिसमें कब्जे का प्रश्न अंतर्वलित होता है और उसका न्यायनिर्णयन कर दिया जाता है, तो हम संहिता की धारा 145 के अधीन समानांतर दांडिक कार्यवाही आरंभ करने के प्रयोजनार्थ मुश्किल से कोई अधिकारिता पाते हैं । इस स्थिति पर संदेह करने या उसको विवादित करने के लिए कोई परिधि नहीं है कि सिविल न्यायालय की डिक्री दांडिक न्यायालय पर ऐसे किसी मामले, जैसाकि हमारे समक्ष उपस्थित है, में बाध्यकारी होती है... समानांतर कार्यवाहियां जारी रखे जाने की अनुज्ञा प्रदान नहीं की जानी चाहिए और वह स्थिति, जिसमें सिविल न्यायालय की डिक्री विद्यमान है, दांडिक न्यायालय को अपनी अधिकारिता का अवलंब लेने की अनुज्ञा प्राप्त नहीं होनी चाहिए, विशेष रूप से जब कब्जे के प्रश्न का परीक्षण सिविल न्यायालय द्वारा किया जा रहा हो और पक्ष अंतरिम आदेश प्राप्त करने के लिए सिविल न्यायालय की शरण में जाने की स्थिति में हों, जैसेकि विवाद के लंबन के दौरान संपत्ति के पर्याप्त संरक्षण के लिए व्यादेश या रिसीवर की नियुक्ति । मुकदमेबाजी की गुणजता पक्षों के हित में नहीं होती और न ही निरर्थक मुकदमेबाजी पर जनता का समय व्यर्थ किए जाने की अनुज्ञा प्रदान की जानी चाहिए । अतः, हम इस बाबत संतुष्ट हैं कि समानांतर मुकदमेबाजी जारी नहीं रहनी चाहिए ... ।'

न्यायालय ने इस निवेदन को अस्वीकार कर दिया कि रामसुमेर पुरी महंत **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य (उपरोक्त) वाले मामले में प्रतिपादित सिद्धांत केवल सिविल न्यायालय द्वारा विवाद्यक के न्यायनिर्णयन के पश्चात् लागू होगा –

'13. हम इस निवेदन को स्वीकार कर पाने में असमर्थ हैं कि **रामसुमेर** [(1985) 1 एस. सी. सी. 427 = (1985) एस. सी. सी. (क्रि.) 98] वाले मामले में

> अधिकथित सिद्धांत केवल तब लागू होंगे, यदि सिविल न्यायालय ने पहले ही संपत्ति से संबंधित विवाद का न्यायनिर्णयन कर दिया है और अपना निष्कर्ष दे दिया है । हमारे विचार में **रामसुमेर** (उपरोक्त) वाले मामले में यह अभिकथित किया गया है कि मुकदमेबाजी की गुणजता से बचा जाना चाहिए चूंकि यह पक्षों के हित में नहीं होती और निरर्थक मुकदमेबाजी पर जनता का समय व्यर्थ होता है । इस सिद्धांत पर यह विनिर्धारित किया गया है कि जब सिविल न्यायालय द्वारा कब्जे के प्रश्न का परीक्षण किया जा रहा हो और पक्ष विवाद के लंबन के दौरान संपत्ति के पर्याप्त संरक्षण के प्रयोजनार्थ सिविल न्यायालय की शरण में जाने की स्थिति में हों, तो समानांतर कार्यवाही अर्थात् धारा 145 के अंतर्गत कार्यवाही जारी नहीं रहनी चाहिए ।'"

इस विवाद्यक पर विचार करते हुए कि विवाद के न्यायनिर्णयन के लिए वाद संस्थित कराए जाने के पश्चात् कब धारा 145 के अधीन कार्यवाही की पैरवी आगे नहीं की जानी चाहिए, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया –

> '14. झुम्मामल **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य**,** [(1988) 4 एस. सी. सी. 452 = (1988) एस. सी. सी. (क्रि.) 974] वाले मामले का अवलंब लेते हुए यह निवेदन किया गया कि यह न्यायालय यह अधिकथित करता है कि मात्र इस कारणवश कि कोई वाद लंबित है, इसका यह आशय नहीं होता कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन कार्यवाही को नगण्य समझा जाए । हमारे विचार में यह न्यायालय ऐसी किसी व्यापक प्रतिपादना को अधिकथित नहीं करता । इस मामले में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन कार्यवाहियां एक अंतिम आदेश के द्वारा समाप्त हुईं । तत्पश्चात् उस पक्ष ने, जिसके विरुद्ध निर्णय पारित किया गया, सिविल कार्यवाहियां फाइल कीं । उसने सिविल कार्यवाहियां फाइल करने के पश्चात् प्रार्थना की कि धारा 145 की कार्यवाही में

पारित अंतिम आदेश को अभिखंडित कर दिया जाए । इसी संदर्भ में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि मात्र इस कारणवश कि कोई सिविल वाद फाइल किया जा चुका था, का यह आशय नहीं होगा कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन पारित अंतिम आदेश को अभिखंडित कर दिया जाना चाहिए । यह सर्वथा भिन्न स्थिति होगी । इस मामले में सिविल वाद पहले फाइल किया गया था । सक्षम सिविल न्यायालय द्वारा यथास्थिति कायम किए जाने का आदेश पहले ही पारित कर दिया गया था । तत्पश्चात्, धारा 145 के अंतर्गत फाइल की गई कार्यवाहियां आरंभ हो गईं । धारा 145 के अधीन फाइल की गई कार्यवाहियों में कोई अंतिम आदेश पारित नहीं किया गया था । हमारे विचार में वर्तमान मामले के तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए **रामसुमेर** [(1985) 1 एस. सी. सी. 427 = (1985) एस. सी. सी. (क्रि.) 98] वाले मामले में अधिकथित विनिश्चयानुपात इस मामले में पूर्णतया लागू होता । हम स्पष्ट करते हैं कि हम यह अभिकथित नहीं कर रहें कि प्रत्येक मामले, जिसमें सिविल वाद फाइल किया जाता है, धारा 145 के अधीन फाइल की गई कार्यवाहियां कभी भी नहीं चल सकतीं । यह केवल उन मामलों में होता है, जिनमें सिविल वाद समान संपत्ति के संबंध में कब्जे या स्वत्व की घोषणा के लिए फाइल किया जाता है और जिस सिविल वाद में संबद्ध संपत्ति के संरक्षण के संबंध में अनुतोष लागू किए जा सकते हैं और सिविल न्यायालय द्वारा इस बाबत प्रदान किए जा सकते हैं कि धारा 145 के अधीन कार्यवाहियां जारी रखे जाने की अनुज्ञा प्रदान नहीं की जानी चाहिए । ऐसा इस कारणवश है क्योंकि सिविल न्यायालय पक्षों के मध्य स्वत्व और साथ ही कब्जे के प्रश्न को निर्णीत करने के लिए सक्षम होता है और सिविल न्यायालय के आदेश, मजिस्ट्रेट पर बाध्यकारी होते हैं ।'

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

अब हम धारा 145 की कार्यवाहियों के संबंध में विधि में स्थापित

स्थिति का उल्लेख करते हुए वर्तमान मामले में तथ्यों के समुच्चय से संबंधित विधि के उपयोजन का उल्लेख करेंगे । धारा 145 के उपबंधों का अवलंब केवल तब लिया जा सकता है जब शांति भंग के खतरे की आशंका हो । मजिस्ट्रेट की अधिकारिता स्वत्व के विवादित प्रश्नों को न्यायनिर्णीत किए जाने तक विस्तारित नहीं होती । मजिस्ट्रेट में स्थिति की आकस्मिकता का सामना करने और शांति बनाए रखने का प्राधिकार निहित होता है । मजिस्ट्रेट द्वारा किया जाने वाला विनिर्धारण मात्र इस सीमा तक सीमित होता है कि आदेश की तारीख पर कौन सा पक्ष संपत्ति के वास्तविक कब्जे में था । वास्तविक उद्देश्य यह निर्णीत करना है कि वास्तव में भौतिक कब्जा किसके पास है और न कि भूमि पर स्वत्व द्वारा समर्थित विधिक कब्जा । मजिस्ट्रेट को धारा 145 के अधीन कार्यवाहियों को आरंभ किए जाने के प्रयोजनार्थ विवाद, जिसके कारण शांतिभंग कारित होने की संभाव्यता हो, की विद्यमानता के बाबत संतुष्ट होना चाहिए । मजिस्ट्रेट द्वारा जांच संक्षिप्त प्रकृति की होती है, जिसका उद्देश्य इलाके में उत्पन्न हुए विवाद के परिणामस्वरूप शांतिभंग की आशंका के कारण शांति को सुनिश्चित करना होता है ।

237. फैज़ाबाद और अयोध्या के अपर नगर मजिस्ट्रेट द्वारा तारीख 29 दिसंबर, 1949 की धारा 145 की उपधारा (1) के अधीन आरंभिक आदेश जारी किया गया था । साथ ही साथ उपधारा (4) के द्वितीय परंतुक के अधीन स्थिति को आकस्मिक प्रतीत करते हुए एक कुर्की आदेश भी पारित किया गया था । रिसीवर ने तारीख 5 जनवरी, 1950 को संपत्ति का कब्जा अपने हाथों में ले लिया और उस संपत्ति के साथ संलग्न वस्तुओं की एक सूची तैयार की । मजिस्ट्रेट के आदेश के मतावलंबन में केवल दो या तीन पुजारियों को उस स्थान के भीतर जाने और धार्मिक अनुष्ठानों जैसेकि भोग और पूजा का पालन करने की अनुज्ञा थी, जहां मूर्तियां रखी हुई थीं और जनसामान्य को केवल दीवार पर लगी हुई जाली के पीछे से दर्शन की अनुज्ञा थी । धारा 145 के अधीन कार्यवाहियां न्यायिक प्रकृति की नहीं थीं; मजिस्ट्रेट इस धारा के उपबंधों के अधीन अपने प्राधिकार का प्रयोग करते हुए पक्षों के सारभूत अधिकारों पर निर्णय लेने के लिए सक्षम नहीं था । धारा 145 के अधीन कार्यवाहियां सिविल कार्यवाहियों के समान नहीं होती । किसी संपत्ति के

स्वत्व और स्वामित्व पर सारभूत दावों का न्यायनिर्णयन सक्षम सिविल कार्यवाहियों में किया जा सकता है । धारा 145 के अधीन कार्यवाहियां किसी सिविल न्यायालय के समक्ष विचारण की प्रकृति की नहीं होती और मात्र पुलिस कार्यवाहियों की प्रकृति की होती हैं । मजिस्ट्रेट का आदेश पक्षों के सारभूत अधिकारों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित नहीं कर सकता । संपत्ति की कुर्की और रिसीवर की नियुक्ति के पश्चात् संपत्ति विधिक अभिरक्षा की संपत्ति हो जाती है और रिसीवर संपत्ति के वास्तविक स्वामी के लाभार्थ उस संपत्ति का धारक होता है । इस प्रकार से नियुक्त रिसीवर को वाद में हितबद्ध पक्ष के रूप में वर्णित नहीं किया जा सकता । मजिस्ट्रेट ने तारीख 30 जुलाई, 1953 और 31 जुलाई, 1954 को पारित अपने पश्चात्वर्ती आदेशों द्वारा कार्यवाहियों को स्थगित कर दिया और कुर्की के आदेश को कायम रखा ।

238. न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने न्यायत: मताभिव्यक्ति की है कि वाद संख्या 1 में पारित अनंतरिम व्यादेश, जिसके द्वारा यथास्थिति बनाए रखे जाने के लिए आदेशित किया गया था और सेवा पूजा को जारी रखा गया था, के आदेश को दृष्टि में रखते हुए धारा 145 के अधीन कार्यवाहियों को बंद नहीं किया जा सकता, चूंकि इस कारणवश यथास्थिति में व्यवधान पड़ जाएगा । न्यायमूर्ति अग्रवाल ने मताभिव्यक्ति की कि :–

> "2244. ... हम सिविल न्यायालय द्वारा पारित व्यादेश के आदेश के परिशीलन से इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि तारीख 16 जनवरी, 1950 को अंतरिम व्यादेश के प्रयोजनार्थ प्रस्तुत किए गए आवेदन में की गई प्रार्थना के निबंधनों के अनुसार एक साधारण आदेश पक्षों को यथास्थिति बनाए रखने के लिए निर्देशित करते हुए पारित किया गया था । तत्पश्चात् तारीख 19 जनवरी, 1950 को इस आदेश को उपांतरित किया गया था किंतु सिविल न्यायालय ने अपना स्वयं का कोई रिसीवर नियुक्त नहीं किया और नगर मजिस्ट्रेट को भी निर्देशित नहीं किया कि वह किसी अन्य व्यक्ति या मजिस्ट्रेट द्वारा नियुक्त रिसीवर के स्थान पर न्यायालय के किसी अन्य रिसीवर को कब्जा अंतरित कर दे । इसके विपरीत वाद संख्या 1 में नगर मजिस्ट्रेट को भी प्रतिवादी बनाया गया और

सिविल न्यायालय ने प्रतिवादियों को यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश देते हुए एक आदेश पारित किया । सिविल न्यायालय ने यह भी स्पष्ट किया कि सेवा और पूजा, जैसीकि चल रही थी, चलती रहेगी ... मजिस्ट्रेट कार्यवाहियों को बंद करने के द्वारा इस आदेश का अनदेखा नहीं कर सकता था, चूंकि यदि वह ऐसा करता तो इसके परिणामस्वरूप रिसीवर भार मुक्त हो जाता और कुर्क संपत्ति निर्मुक्त हो जाती और उसके प्रभार से मुक्त हो जाती । अन्य शब्दों में सिविल न्यायाधीश द्वारा इस आदेश का अर्थान्वयन एक ऐसे आदेश के रूप में किया जा सकता था, जिसके द्वारा यथास्थिति बनाए रखे जाने वाले आदेश की अवहेलना की गई हो । यदि सिविल न्यायाधीश ने ऐसा आदेश पारित किया होता, जिसके द्वारा न्यायालय के रिसीवर की नियुक्ति की जाती और मजिस्ट्रेट को यह निर्देश दिया जाता कि वह संपत्ति का कब्जा उस रिसीवर को सौंप दे, तो स्थिति भिन्न होती । इन परिस्थिति में, यदि मजिस्ट्रेट ने कार्यवाहियों को बंद नहीं किया बल्कि उनको स्थगित कर दिया, तो हम उसके द्वारा कोई त्रुटि नहीं पाते । इसके अतिरिक्त, जब मजिस्ट्रेट के पूर्ववर्ती आदेश, जिसके द्वारा संपत्ति की कुर्की की गई और उस संपत्ति को रिसीवर के प्रभार के अंतर्गत कर दिया गया, के कारणवश वादियों को सिविल वाद फाइल करने का कोई वादकारण उद्भूत नहीं हुआ हम यह समझ पाने में असमर्थ हैं कि पश्चात्वर्ती आदेश, जिसके द्वारा मात्र लंबित कार्यवाहियों को स्थगित कर दिया गया, कोई सहायता कैसे प्रदान कर सकता है । मजिस्ट्रेट द्वारा पारित कुर्की आदेश स्वयमेव ही कोई वादकारण प्रदान नहीं करता और इस आदेश के द्वारा मात्र पक्षों को यह ज्ञात होता है कि संबद्ध संपत्ति के स्वत्व और/या कब्जे के बाबत कोई विवाद अस्तित्व में है और लोक शांति और व्यवस्था में व्यवधान की भी आशंका है । पक्षों को वादकारण की अप्रत्यक्ष रूप से जानकारी है कि कोई विवाद विद्यमान है और न कि मजिस्ट्रेट का आदेश जिसके द्वारा उसने प्रश्नगत संपत्ति को कुर्क किया और उसको रिसीवर के प्रभार के अंतर्गत कर दिया ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

239. विधि की सुस्थिरीकृत स्थिति को ध्यान में रखते हुए इस न्यायालय द्वारा दिए गए पूर्ववर्ती विनिश्चयों से यह स्थिति स्पष्ट होती है कि संपत्ति की कुर्की के मजिस्ट्रेट के तारीख 29 दिसंबर, 1949 के आदेश के पश्चात् निर्मोही अखाड़ा के समक्ष कब्जा और स्वत्व के लिए घोषणात्मक वाद फाइल किए जाने में कोई अवरोध नहीं था । मजिस्ट्रेट का आदेश संपत्ति पर कब्जे के परस्पर विरोधी अधिकारों या किसी भी पक्ष के परस्पर विरोधी दावों के गुणागुण को निर्णीत नहीं करता या उनका न्यायनिर्णयन नहीं करता । संपत्ति के स्वत्व और कब्जे के संबंध में सारभूत अधिकारों पर केवल किसी सिविल न्यायालय के समक्ष सिविल कार्यवाहियों में विचार किया जा सकता था । मजिस्ट्रेट को स्वामित्व और स्वत्व के प्रश्नों को विनिर्धारित करने की अधिकारिता प्राप्त नहीं थी । धारा 145 के अधीन कार्यवाहियां अधिकार प्राप्त स्वामी के स्वत्व या कब्जे के संबंध में किसी न्यायनिर्णयन में परिणित नहीं हो सकती थी चूंकि उसका न्यायनिर्णयन सिविल न्यायालयों की अनन्य अधिकारिता के अधिक्षेत्र के अंतर्गत आता है । निर्मोही अखाड़ा यह प्रतिरक्षा नहीं ले सकता कि धारा 145 के अधीन कार्यवाहियों में कोई अंतिम आदेश पारित नहीं किया गया और जिसके परिणामस्वरूप परिसीमा आरंभ नहीं हुई । मजिस्ट्रेट ने मात्र वाद संख्या 1 में यथास्थिति बनाए रखे जाने के संबंध में सिविल न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देशों का अनुपालन किया और तदनुसार धारा 145 के अधीन लंबित कार्यवाहियों को स्थगित कर दिया ।

1898 के परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 142 के अधीन मामला

240. अनुच्छेद 142 अचल संपत्ति के कब्जे के बाबत वाद फाइल किए गए वाद को शासित करता है जब वादी को, यदि वह कब्जे में है, कब्जे से बेदखल कर दिया गया है या उसने 'कब्जे को त्याग दिया है' । अनुच्छेद 142 के अधीन परिसीमा की अवधि 12 वर्ष होती है । परिसीमा कब्जे या कब्जे के त्याग की तारीख से आरंभ होती है । निर्मोही अखाड़ा का दावा है कि वादकारण तारीख 5 जनवरी, 1950 को उद्भूत हुआ और वाद जो तारीख 17 दिसंबर, 1959 को संस्थित कराया गया था, 12 वर्ष की परिसीमा के भीतर है ।

कब्जे से बेदखल किए जाने और उसका परित्याग किए जाने की संकल्पनाएं

241. वर्तमान मामले में के तथ्यों में जन्मस्थान मंदिर के कब्जे की ईप्सा किए जाने के संबंध में निर्मोही अखाड़ा के वाद में विनिर्दिष्ट अनुतोष की अनुपस्थिति के अतिरिक्त बेदखल किए जाने और कब्जे का परित्याग किए जाने की संकल्पनाओं के लागू होने से संबंधित अन्य पहलू की भी छानबीन की जानी चाहिए । 1908 के परिसीमा अधिनियम का अनुच्छेद 142 अचल संपत्ति के कब्जे के बाबत वाद पर लागू होता है । यह अचल संपत्ति के कब्जे से संबंधित उन मामलों पर लागू होता है, जो दोनों प्रकार की संपत्तियों के अंतर्गत आते हैं । प्रथम प्रकार के वाद वे वाद हैं जिनमें वादी, जबकि वह संपत्ति के कब्जे में है, को कब्जे से बेदखल कर दिया गया है । द्वितीय प्रकार के वाद वे वाद हैं, जिनमें ऐसी स्थिति अंतर्वलित होती है, जहां यद्यपि वादी कब्जे में है, परंतु उसने कब्जे का परित्याग कर दिया है । अन्य शब्दों में अनुच्छेद 142, जो अचल संपत्ति के कब्जे के संबंध में फाइल किए गए वादों पर विचार करता है, के अंतर्गत इस अपेक्षा का पूर्ण किया जाना आवश्यक होता है कि वादी को उस समय संपत्ति के कब्जे में होना चाहिए, जब दोनों में से कोई भी घटना घटित हुई हो अर्थात् संपत्ति से बेदखल किए जाने की घटना या संपत्ति के कब्जे का परित्याग किए जाने की घटना, जैसा भी मामला हो । अनुच्छेद 142 के अधीन वाद के वर्णन को मात्र अचल संपत्ति के कब्जे के लिए फाइल किए गए वाद के वर्णन तक सीमित नहीं किया गया है । इस उपबंध के अंतर्गत वादी के पूर्ववर्ती कब्जे और या तो उसको कब्जे से बेदखल किए जाने या उसके द्वारा कब्जे का परित्याग किए जाने, जब वह कब्जे में हो, की अपेक्षा को सम्मिलित किया गया है । परिसीमा की अवधि 12 वर्ष है और परिसीमा कब्जे से बेदखल किए जाने या कब्जे का परित्याग किए जाने की तारीख से आरंभ होती है ।

242. अनुच्छेद 144 अवशिष्ट प्रावधान है, जो अचल संपत्ति के कब्जे से संबंधित वादों या अचल संपत्ति में किसी हित, जिसको विनिर्दिष्ट रूप से अन्यथा उपबंधित न किया गया हो, पर विचार करता है । अवशिष्ट प्रावधान के रूप में अनुच्छेद 144 अचल संपत्ति के कब्जे

से संबंधित वादों, जो किसी ऐसे वर्णन वाले वाद के अंतर्गत नहीं आते जिसको अनुसूची के अनुच्छेदों में विनिर्दिष्ट रूप से उल्लिखित किया गया हो, पर लागू होता है । अनुच्छेद 144 के मामले में परिसीमा की अवधि 12 वर्ष है और परिसीमा आरंभ तब होती है जब प्रतिवादी का कब्जा वादी के हित के प्रतिकूल हो जाए ।

243. जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, अनुच्छेद 142 में दो सुभिन्न संकल्पनाएं सम्मिलित हैं । प्रथम संकल्पना है कब्जे से बेदखल किए जाने की और द्वितीय संकल्पना है कब्जे का परित्याग किए जाने की । कब्जे से बेदखल किए जाने का अर्थ होता है कब्जे से निकाल दिया जाना; इसके अंतर्गत ऐसी स्थिति अंतर्वलित होती है, जिसमें किसी व्यक्ति को उसके कब्जे से किसी अन्य व्यक्ति के कब्जे में आ जाने के कारण वंचित कर दिया जाता है । कब्जे से बेदखल किए जाने का अर्थ होता है कब्जे के अधिकार से वंचित किया जाना, जो स्वेच्छयापूर्वक नहीं किया गया और जिसके अंतर्गत निकाल दिए जाने का ऐसा कार्य अंतर्वलित होता है, जिसके द्वारा किसी ऐसे व्यक्ति को बेदखल किया जाता, जो संपत्ति के कब्जे में था । 'बेदखल' अभिव्यक्ति को **ब्लैक के विधि शब्दकोष** [ब्लैक का विधि शब्दकोष, दसवां संस्करण, 572] में परिभाषित किया गया है, जो इस प्रकार है :–

> "संपत्ति के अधिकारपूर्वक कब्जे से वंचित किया जाना या निष्कासित किया जाना; उस व्यक्ति से, जो भूमि के कब्जे का विधिक रूप से हकदार है, को दोषपूर्ण ढंग से ले लिया जाना या प्रतिधारित किया जाना; निकाल देना ।"

'परित्याग' और 'बेदखली' अभिव्यक्तियों को **पी. रामनाथ अय्यर** की **एडवांस लॉ लैक्सिकॉन** [पांचवां संस्करण, पृष्ठ 1537 और 1563] में परिभाषित किया गया है, जो इस प्रकार है :–

> "परित्याग का आशय यह है कि कोई व्यक्ति जो कब्जे में है, कब्जे से बाहर हो जाता है और उसके स्थान पर कोई अन्य व्यक्ति कब्जे में आ जाता है । इसका आशय है कि अधिभोग के समस्त संकेत समाप्त हो चुके हैं ।"

"बेदखली या निकाल दिया जाना भूमि का उसके अधिकारपूर्ण स्वामी से दोषपूर्ण ढंग से कब्जे ले लिया जाना है । बेदखली से आशय केवल उन मामलों से, जिनमें भूमि के स्वामी को किसी अन्य व्यक्ति के कार्य द्वारा स्वयमेव भूमि से या उससे उद्भूत होने वाले लाभों की प्राप्ति से उसके कब्जे से पूर्णतया वंचित कर दिया जाना है । किसी व्यक्ति को किसी अचल संपत्ति से बेदखल नहीं किया जा सकता जब तक कि तत्समय कब्जे से बाहर न हो गया हो ।"

बेदखली से आशय उस व्यक्ति के किसी विनिर्दिष्ट समय-बिंदु पर पूर्व विद्यमान कब्जे से है, जिसको बाद में बेदखल कर दिया गया । कोई व्यक्ति जो कब्जे में नहीं है, के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि उसको बेदखल किया गया । इसके विपरीत परित्याग से अभिप्राय कब्जे के परित्यजन से है और इसको अनेक अवसरों पर किसी व्यक्ति के स्वैच्छिक कार्य के रूप में वर्णित किया जाता है, जो अपनी स्वयं की इच्छा से कब्जे का परित्याग कर देता है । **जी. डब्ल्यू. पेटन** ने 'न्यायशास्त्र' पर अपने मौलिक ग्रंथ में उल्लेख किया है कि "अंग्रेजी भाषा में अधिकांश शब्दों की भांति, 'कब्जा' शब्द के विविध प्रयोग होते हैं और प्रयोग के संदर्भ पर आश्रित होते हुए विविध अर्थ होते हैं ।' लेखक ने कहा है कि 'किसी शब्द के समुचित, संपूर्ण अर्थ की खोज के निष्फल होने की संभाव्यता होती है ।'

ब्लैक की **ला डिक्सनरी** (दसवां संस्करण पृष्ठ 1351) में 'कब्जा' अभिव्यक्ति को परिभाषित किया गया है, जो इस प्रकार है :–

"1. किसी व्यक्ति के अधिकार में संपत्ति रखने या धारित करने का तथ्य; संपत्ति पर कब्जे का प्रयोग ।

2. वह अधिकार जिसके अधीन कोई अन्य लोगों को अपवर्जित करते हुए किसी वस्तु पर नियंत्रण का प्रयोग करता है यह किसी भौतिक वस्तु के अनन्य प्रयोग पर दावे का निरंतर रूप से जारी अभ्यास होता है ।"

इस न्यायालय ने **सुपरिन्टेंडेन्ट एंड रिमेम्बरेंसर ऑफ लीगल**

अफेयर्स, पश्चिमी बंगाल बनाम **अनिल कुमार भुनंजा**[1] वाले मामले में मताभिव्यक्ति की कि 'कब्जा बहुरूपी शब्द है' और इसलिए इस शब्द को किसी ऐसे अर्थ में पढ़ा जाना संभव नहीं था, जो प्रत्येक संदर्भ में लागू होता हो । न्यायालय ने **साल्मंड** के न्यायशास्त्र का अवलंब लेते हुए उल्लेख किया कि कब्जे का आशय किसी अधिकार और तथ्य से होता है; उपभोग का अधिकार, जो संपत्ति के अधिकार और वास्तविक आशय के तथ्य के साथ संलग्न होता है । संकल्पना के रूप में कब्जे के अंतर्गत 'कब्जाधीन वस्तु और कब्जे का आशय' सम्मिलित होता है । प्रथम (कब्जाधीन वस्तु) कब्जे के अधीन वस्तु के प्रयोग की शक्ति और प्रत्याक्षा के आधार की विद्यमानता को इस आधार पर अंतर्वलित करता है कि कब्जे के प्रयोग में मध्यक्षेप नहीं किया जाएगा । द्वितीय (कब्जे का आशय) किसी वस्तु के अनन्य प्रयोग के बाबत स्वयं के द्वारा उचित कार्य करने के इरादे का आधार तत्व होता है ।

244. इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने **श्याम सुंदर प्रसाद** बनाम **राजपाल सिंह**[2] वाले मामले में 1908 के परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 142 और 144 के मध्य अंतर को स्पष्ट किया । माननीय न्यायालय ने मताभिव्यक्ति की :–

> "3. ... पुराने परिसीमा अधिनियम के अंतर्गत कब्जे के लिए फाइल किए गए समस्त वाद, चाहे वे स्वत्व पर आधारित हों या पूर्ववर्ती कब्जे पर, जिनमें वादी को यद्यपि वह कब्जे में था, कब्जे से बेदखल कर दिया गया था या उसने कब्जे का परित्याग कर दिया था, अनुच्छेद 142 द्वारा शासित होते थे । ऐसे मामलों में, जिनमें मामला वादी को कब्जे से बेदखल किए जाने या उसके द्वारा कब्जे का परित्याग किए जाने से संबंधित नहीं था, अनुच्छेद 142 लागू नहीं होता था । मात्र स्वत्व और न कि कब्जे या कब्जे के परित्याग पर आधारित वाद अनुच्छेद 144 द्वारा शासित होते थे जब तक कि उनके बाबत किसी अन्य अनुच्छेद के अंतर्गत विनिर्दिष्ट रूप से उपबंधित नहीं कर दिया जाता था । इसलिए, अनुच्छेद 142 को लागू किए जाने के प्रयोजनार्थ यह आवश्यक नहीं

---

[1] (1979) 4 एस. सी. सी. 274.

[2] (1995) 1 एस. सी. सी. 311.

था कि वाद मात्र स्वत्व के आधार पर फाइल किया गया हो बल्कि कब्जे के आधार पर भी फाइल किया गया हो ।"

245. वाद को अनुच्छेद 142 के अधिक्षेत्र के भीतर लाए जाने के लिए निम्नलिखित अपेक्षाएं पूर्ण होनी चाहिए :–

(i) वाद अचल संपत्ति के कब्जे के लिए होना चाहिए;

(ii) वादी को यह साबित करना चाहिए कि वह संपत्ति के कब्जे में रहा है; और

(iii) वादी को बेदखल किया गया हो या उसको संपत्ति के कब्जे में रहते हुए कब्जे का परित्याग कर दिया हो ।

अनुच्छेद 142 लागू होने के प्रयोजनार्थ, ये अपेक्षाएं एक साथ पूरी होनी चाहिए ।

246. निर्मोही अखाड़ा द्वारा फाइल किए गए वाद से यह अनुध्यात होता है कि जन्मस्थान, जिसे सामान्यत: जन्मभूमि के नाम से जाना जाता है, जो भगवान राम का जन्मस्थान है और निर्मोही अखाड़ा से सदैव संबंधित है और सदैव संबंधित रहा है' और वही इसका 'प्रबंधन करता रहा है चढ़ावा प्राप्त करता रहा है' । वादियों के अनुसार मंदिर सदैव निर्मोही अखाड़ा के कब्जे में रहा है । वाद में शिकायत इस बाबत की गई है कि वादियों को मंदिर में उनके प्रबंधन और प्रभार से दोषपूर्ण ढंग से वंचित कर दिया गया था, जिसके परिणामस्वरूप धारा 145 के अधीन कुर्की का आदेश पारित किया और मजिस्ट्रेट द्वारा कार्यवाहियों को मुस्लिम पक्षों की मिलीभगत से अनुचित रूप से लंबी अवधि तक लंबित रखा गया । निर्मोही अखाड़ा ने प्रबंध तंत्र से रिसीवर को हटाए जाने और वादियों को प्रबंध तंत्र और प्रभार सौंपे जाने की प्रार्थना की है । आवश्यक रूप से यह प्रार्थना अभिवचनों के पैरा 4 में 'कब्जा' और पैरा 2 में 'संबंधित' अभिव्यक्तियों के आधार पर की गई है कि निर्मोही अखाड़ा ने वाद को अनुच्छेद 142 की परिधि के भीतर लाए जाने की ईप्सा की है (और इस प्रकार अवशिष्ट अनुच्छेद 120 की परिधि के बाहर है) ।

247. सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल डा. राजीव धवन ने श्रमसाध्यतापूर्वक यह प्रदर्शित करने का

प्रयास किया कि निर्मोही अखाड़ा की तरफ से मामले को अभिवचनों के परे ले जाने का प्रयास कितनी सावधानीपूर्वक किया गया है और अधिक विनिर्दिष्ट रूप से उस अनुतोष की ईप्सा की गई है, जिसका दावा लिखित निवेदनों में वाद की परिधि को विस्तारित किए जाने का प्रयास करते हुए किया गया है ।

248. हमारे विचार में यह आवश्यक होगा कि किस प्रकार से वाद संख्या 3 की परिधि का उल्लेख किया गया और किस प्रकार से परिसीमा के भीतर लाए जाने के प्रयोजनार्थ लिखित निवेदनों के द्वारा वाद की प्रकृति को (काउंसेल की प्रतिभा के द्वारा) परिवर्तित करने का प्रयास किया गया । जहां तक प्रथम सिद्धांत का प्रश्न है, वादपत्र को संपूर्णता में पढ़ा जाना चाहिए । तथापि, किसी वाद के वादी को अपील में लिखित कथनों के आधार पर वाद की प्रकृति को परिवर्तित किए जाने की अनुज्ञा प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ यह नितांत रूप से यह भिन्न कारण होगा । किसी वादपत्र की अंतर्वस्तु में किसी भी प्रकार का परिवर्तन केवल सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 6, नियम 17 के अधीन संशोधन के द्वारा किया जा सकता है । फिर भी, जैसाकि हम विचार करेंगे, लिखित निवेदनों में वाद की अंतर्वस्तु को परिवर्तित किए जाने का प्रतिभा संपन्न प्रयास किया गया है । यह अनुज्ञेय नहीं है । वाद संख्या 3 में वादी की ओर से उपस्थित वरिष्ठ विद्वान् काउंसेल श्री एस. के. जैन ने अपने लिखित निवेदनों के पैरा 13(घ) में निम्नलिखित निवेदन किए :–

> "(ध) <u>वादी – निर्मोही अखाड़ा न केवल संपत्ति के स्वामित्व और कब्जे का दावा कर रहा था</u> अर्थात् मुख्य मंदिर और भीतरी चबूतरे का दावा, बल्कि वह 'जन्मस्थान' और साथ ही भगवान रामचंद्र, लक्ष्मण जी, हनुमान जी और शालीग्राम जी की मूर्तियों के प्रबंधक (शिबायत) होने का भी दावा कर रहा था ।"
>
> (अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

लिखित निवेदनों के पैरा 17(त्र) में यह दलील दी गई :–

> "(17त्र) चूंकि संपत्ति कुर्की के अधीन थी और रिसीवर के कब्जे में थी, <u>अत: न्यायालय के लिए यह आवश्यक था कि स्वत्व के</u>

विवाद्यक का निर्णय और न्यायनिर्णयन किया जाए और वादों को परिसीमा द्वारा बाधित होने के कारण खारिज नहीं किया जा सकता था । संपत्ति अधिकारपूर्ण स्वामी को वापस प्राप्त होनी चाहिए और असीमित अवधि तक विधि अभिरक्षा में नहीं रह सकती । इसलिए, रिसीवर से कब्जे के पुनर्स्थापन के प्रयोजनार्थ फाइल किए गए किसी वाद में परिसीमा का प्रश्न कभी भी उद्भूत नहीं हो सकता और ऐसे वाद परिसीमा द्वारा बाधित कभी भी नहीं हो सकते जब तक संपत्ति रिसीवर के अधीन बनी रहती है, कम से कम उस व्यक्ति के संबंध में जिससे कब्जा लिया गया था ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

पुनः, पैरा 18(ट) में यह अभिकथित किया गया :–

"(ट) चूंकि संपत्ति रिसीवर के नियंत्रणाधीन है, इसलिए रिसीवर द्वारा प्राप्त की गई आमदनियों में से अंतःकालीन लाभ का दावा करते हुए फाइल किया गया कोई वाद संपत्ति के वास्तविक स्वामी द्वारा फाइल किया जा सकता है और ऐसा वाद, जिसके लिए वादकारण उत्पन्न होता है और कोई लाभ उद्भूत होता है, निरंतर रूप से वादकारण को उत्पन्न करेगा । अंतःकालीन लाभ की हकदारी के विवाद्यक को विनिर्धारित करते हुए स्वत्व के प्रश्न का न्यायनिर्णयन किया जाना आवश्यक होगा और न्यायनिर्णयन हो जाने पर रिसीवर द्वारा कब्जा संपत्ति के वास्तविक स्वामी को प्रदान कर दिया जाएगा ।

(i) इल्लेप्पा नायकेन **बनाम** लक्ष्मणा नायकेन (ए. आई. आर. 1949 मद्रास 71) ।

(ii) वेंकट गिरी के. रजब **बनाम** इसाकापल्ली सुब्बइय्या (आई. एल. आर. 1926 मद्रास 410) ।

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

तत्पश्चात् पैरा 18(ड) में यह अभिकथित किया गया :–

(ङ) वादी – निर्मोही अखाड़ा न केवल संपत्ति अर्थात् मुख्य मंदिर या भीतरी चबूतरे के स्वामित्व और कब्जे का दावा कर रहा

था बल्कि 'जन्मस्थान' और साथ ही भगवान रामचंद्र, लक्ष्मण जी, हनुमान जी और शालीग्राम जी की मूर्तियों के प्रबंधक (शिबायत) होने का भी दावा कर रहा था । उन कारणोंवश, जिनको न्यायालय से यह अभिनिर्धारित किए जाने के प्रयोजनार्थ समर्थन प्राप्त हुआ कि 1989 का मूल वाद संख्या 5 परिसीमा के भीतर है, यह अभिकथित किया गया कि देवता शाश्वत रूप से नाबालिक हैं, इसलिए वादी निर्मोही अखाड़ा के वाद को परिसीमा द्वारा बाधित अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

अंत में पैरा 18 में यह अभिनिर्धारित किया गया :–

"18. वादपत्र में वादी से 'संबंधित' संपत्ति का दावा दो निवेदनों पर आधारित है – (i) संपत्ति प्रबंधक/शिबायत की हैसियत में वादी से संबंधित है; और (ii) वादी ने कब्जे में होने के नाते साक्ष्य अधिनियम की धारा 110 को दृष्टि में रखते हुए कब्जाधारी का स्वत्व अर्जित कर लिया है और वह कब्जे में बने रहने का हकदार है जब तक कि प्रतिवादी वादी से बेहतर स्वत्व दर्शित नहीं कर सकता ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

उपरोक्त निवेदन वाद में अभिवचनों के पूर्णतया विपरीत है ।

249. 'से संबंधित' अभिव्यक्ति कला का शब्द नहीं है और इसका प्रयोग संदर्भ के अनुसार परिवर्तित होता रहता है । **राजा मोहम्मद अमीर अहमद खान** बनाम **म्युनिसिपल बोर्ड ऑफ सीतापुर**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या किसी किराएदार द्वारा 'उससे संबंधित' अभिव्यक्ति का प्रयोग सरकार के उत्तरभागी हित के अस्वीकरण का प्रभाव रखता है । इस संदर्भ में न्यायमूर्ति राजागोपाला अय्यंगर ने तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ की तरफ से निर्णय पारित करते हुए यह मताभिव्यक्ति की कि :–

[1] ए. आई. आर. 1965 एस. सी. 1923.

"24. ... यद्यपि इसमें कोई संदेह नहीं कि 'संबंधित' शब्द किसी आत्यंतिक स्वत्व को निरूपित करने की क्षमता रखता है, फिर भी यह शब्द उस भाव का अर्थ सूचित करने तक सीमित नहीं है । यहां तक कि किसी हित का कब्जा, जो पूर्ण स्वामित्व से कम महत्व का हो, इस शब्द द्वारा प्रकट किया जा सकता है । **वेब्सटर** के शब्दकोष में 'संबंधित' शब्द को जिस अर्थ में स्पष्ट किया गया है, वह 'द्वारा स्वामित्वाधीन, साथ ही कब्जे में हो' है । इसलिए संक्षिप्त भाव, जिसको संसूचित करने के लिए यह शब्द आशयित है, को केवल संपूर्ण दस्तावेज को पढ़े जाने और उस संदर्भ का उल्लेख किए जाने, जिसमें वह उत्पन्न हुआ, द्वारा एकत्रित किया जा सकता है ।"

मामले के तथ्यों के आधार पर यह अभिनिर्धारित किया गया कि किराएदारी की परिस्थितियां बल देकर अभिकथित करने की प्रकृति को विनिर्धारित किए जाने के प्रयोजनार्थ तात्विक प्रकृति की परिस्थितियां हैं । निश्चित रूप से किराएदारी का आरंभ कब हुआ, यह अज्ञात था, फिर भी पट्टेदार ने भवन की सुपर संरचना का निर्माण कर दिया था और अपीलार्थी और उसके पूर्वज संपत्ति का उपभोग सदी के तीन चौथाई से भी अधिक वर्षों से कर रहे थे । संपत्ति के अंतरण भी किए गए थे और संपत्ति विरासत की विषयवस्तु थी । इस प्रभाव का एक सार्वजनिक दस्तावेज इस बाबत तैयार किया गया कि यद्यपि भूमि सरकारी भूमि है, फिर भी इस भूमि के विरासत योग्य और अंतरणीय अधिकार हैं । इस संदर्भ में यह अभिनिर्धारित किया गया कि 'संबंधित' शब्द का प्रयोग सरकार के स्वत्व के परित्याग का प्रभाव नहीं रखता । इसी प्रकार से न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि 'स्वामी' अभिव्यक्ति का प्रयोग 'स्वामित्व' को आत्यंतिक भाव में निरूपित नहीं करता, जिससे कि यह शब्द किराएदारी के त्याग या अस्वीकरण का प्रभाव रख सके ।

"25. ... यद्यपि ये शब्द संदर्भ से पृथक् हैं, फिर भी ये शब्द आत्यंतिक स्वामित्व के प्रकथन के रूप में अर्थान्वयन योग्य है और इसलिए हमारे विचार में इन शब्दों का प्रयोग उस क्रम में नहीं

किया जा सकता, जिसमें वे वर्तमान में प्रयोग किए गए हैं और अपीलार्थियों और उसके पूर्वजों द्वारा संपत्ति के उपभोग के इतिहास को ध्यान में रखते हुए इस प्रकथन के बाबत यह प्रतीत किया जाना चाहिए कि यह प्रकथन आत्यंतिक स्वामित्व की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए स्पष्ट कथन है, जो इस प्रकृति की स्थाई किराएदारी के समपहरण को आवश्यक किए जाने के लिए पर्याप्त है । इस संबंध में इस बात को ध्यान में रखा जाना चाहिए कि संपत्ति के इस उपभोग को सरकार की सहमति के साथ किया गया उपभोग अभिकथित किया गया है । यदि इस प्रकथन को भू-स्वामी के रूप में सरकार के अधिकारों के अनादर में किसी आत्यंतिक स्वामी के अधिकार के रूप में समझा जाए, तो ऐसे उपभोग के बाबत सरकार की सहमति का संदर्भ पूर्णतया अनुचित होगा । सहमति तभी सुसंगत होगी यदि सरकार का संपत्ति में हित हो और इसलिए हम इस लेखांश को इस अर्थ में समझते हैं कि स्थाई, अंतरणीय और पैतृक, विशेष रूप से संपत्ति के अंतरण का अधिकार, जिससे नगरपालिका द्वारा इनकार किया जा रहा था, का उपभोग सरकार की सहमति के साथ किया जाना अभिकथित है । यह हमारे द्वारा अभिनिर्धारित किए जाने का अतिरिक्त कारण है कि सबसे खराब स्थिति में भी यह प्रकथन किराएदारी के समपहरण के प्रयोजनार्थ स्पष्ट नहीं था ।"

शेष आगामी अंक में.....

संसद् के अधिनियम

पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986

(1986 का अधिनियम संख्यांक 29)

[23 मई, 1986]

पर्यावरण के संरक्षण और सुधार का और उनसे संबंधित विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियम

संयुक्त राष्ट्र के मानवीय पर्यावरण सम्मेलन में, जो जून, 1972 में स्टाकहोम में हुआ था और जिसमें भारत ने भाग लिया था, यह विनिश्चय किया गया था कि मानवीय पर्यावरण के संरक्षण और सुधार के लिए समुचित कदम उठाए जाएं ;

यह आवश्यक समझा गया है कि पूर्वोक्त निर्णयों को, जहां तक उनका संबंध पर्यावरण संरक्षण और सुधार से तथा मानवों, अन्य जीवित प्राणियों, पादपों और संपत्ति को होने वाले परिसंकट के निवारण से है, लागू किया जाए ;

भारत गणराज्य के सैंतीसवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

अध्याय 1
प्रारंभिक

1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 है ।

(2) इसका विस्तार सम्पूर्ण भारत पर है ।

(3) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा, जो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियत करे और इस अधिनियम के भिन्न-भिन्न उपबंधों के लिए और भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के लिए भिन्न-भिन्न तारीखें नियत की जा सकेंगी ।

2. परिभाषाएं – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "पर्यावरण" के अंतर्गत जल, वायु और भूमि हैं और वह अंतर-संबंध है जो जल, वायु और भूमि तथा मानवों, अन्य जीवित प्राणियों, पादपों और सूक्ष्मजीव और संपत्ति के बीच विद्यमान है ;

(ख) "पर्यावरण प्रदूषक" से ऐसा ठोस, द्रव या गैसीय पदार्थ अभिप्रेत है जो ऐसी सांद्रता में विद्यमान है जो पर्यावरण के लिए क्षतिकर हो सकता है या जिसका क्षतिकर होना संभाव्य है ;

(ग) "पर्यावरण प्रदूषण" से पर्यावरण में पर्यावरण प्रदूषकों का विद्यमान होना अभिप्रेत है ;

(घ) किसी पदार्थ के संबंध में, "हथालना" से ऐसे पदार्थ का विनिर्माण, प्रसंस्करण, अभिक्रियान्वयन, पैकेज, भंडारकरण, परिवहन, उपयोग, संग्रहण, विनाश, संपरिवर्तन, विक्रय के लिए प्रस्थापना, अंतरण या वैसी ही संक्रिया अभिप्रेत है ;

(ङ) "परिसंकटमय पदार्थ" से ऐसा पदार्थ या निर्मिति अभिप्रेत है जो अपने रासायनिक या भौतिक-रासायनिक गुणों के या हथालने के कारण मानवों, अन्य जीवित प्राणियों, पादपों, सूक्ष्मजीव, संपत्ति या पर्यावरण को अपहानि कारित कर सकती है ;

(च) किसी कारखाने या परिसर के संबंध में, "अधिष्ठाता" से कोई ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जिसका कारखाने या परिसर के कामकाज पर नियंत्रण है और किसी पदार्थ के संबंध में ऐसा व्यक्ति इसके अंतर्गत है जिसके कब्जे में वह पदार्थ भी है ;

(छ) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ।

अध्याय 2
केन्द्रीय सरकार की साधारण शक्तियां

3. केन्द्रीय सरकार की पर्यावरण के संरक्षण और सुधार के लिए उपाय करने की शक्ति – (1) इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते

हुए, केन्द्रीय सरकार को ऐसे सभी उपाय करने की शक्ति होगी जो वह पर्यावरण के संरक्षण और उसकी क्वालिटी में सुधार करने तथा पर्यावरण प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण और उपशमन के लिए आवश्यक समझे ।

(2) विशिष्टतया और उपधारा (1) के उपबंधों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे उपायों के अंतर्गत निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के संबंध में उपाय हो सकेंगे, अर्थात् :–

(i) राज्य सरकारों, अधिकारियों और अन्य प्राधिकरणों की, –

(क) इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए नियमों के अधीन ; या

(ख) इस अधिनियम के उद्देश्यों से संबंधित तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन,

कार्रवाइयों का समन्वय ;

(ii) पर्यावरण प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण और उपशमन के लिए राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम की योजना बनाना और उसको निष्पादित करना ;

(iii) पर्यावरण के विभिन्न आयामों के संबंध में उसकी क्वालिटी के लिए मानक अधिकथित करना ;

(iv) विभिन्न स्रोतों से पर्यावरण प्रदूषकों के उत्सर्जन या निस्सारण के मानक अधिकथित करना :

परन्तु ऐसे स्रोतों से पर्यावरण प्रदूषकों के उत्सर्जन या निस्सारण की क्वालिटी या सम्मिश्रण को ध्यान में रखते हुए, भिन्न-भिन्न स्रोतों से उत्सर्जन या निस्सारण के लिए इस खंड के अधीन भिन्न-भिन्न मानक अधिकथित किए जा सकेंगे ;

(v) उन क्षेत्रों का निर्बन्धन जिनमें कोई उद्योग, संक्रियाएं या प्रसंस्करण या किसी वर्ग के उद्योग, संक्रियाएं या प्रसंस्करण नहीं चलाए जाएंगे या कुछ रक्षोपायों के अधीन रहते हुए चलाए जाएंगे ;

(vi) ऐसी दुर्घटनाओं के निवारण के लिए प्रक्रिया और रक्षोपाय अधिकथित करना जिनसे पर्यावरण प्रदूषण हो सकता है और ऐसी दुर्घटनाओं के लिए उपचारी उपाय अधिकथित करना ;

(vii) परिसंकटमय पदार्थों को हथालने के लिए प्रक्रिया और रक्षोपाय अधिकथित करना ;

(viii) ऐसी विनिर्माण प्रक्रियाओं, सामग्री औऱ पदार्थों की परीक्षा करना जिनसे पर्यावरण प्रदूषण होने की संभावना है ;

(ix) पर्यावरण प्रदूषण की समस्याओं के संबंध में अन्वेषण और अनुसंधान करना और प्रायोजित करना ;

(x) किसी परिसर, संयंत्र, उपस्कर, मशीनरी, विनिर्माण या अन्य प्रक्रिया सामग्री या पदार्थों का निरीक्षण करना और ऐसे प्राधिकरणों, अधिकारियों या व्यक्तियों को, आदेश द्वारा, ऐसे निदेश देना जो वह पर्यावरण प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण और उपशमन के लिए कार्यवाही करने के लिए आवश्यक समझे ;

(xi) ऐसे कृत्यों को कार्यान्वित करने के लिए पर्यावरण प्रयोग-शालाओं और संस्थाओं की स्थापना करना या उन्हें मान्यता देना, जो इस अधिनियम के अधीन ऐसी पर्यावरण प्रयोगशालाओं और संस्थाओं को सौंपे जाएं ;

(xii) पर्यावरण प्रदूषण से संबंधित विषयों की बाबत जानकारी एकत्र करना और उसका प्रसार करना ;

(xiii) पर्यावरण प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण और उपशमन से संबंधित निर्देशिकाएं, संहिताएं या पथप्रदर्शिकाएं तैयार करना ;

(xiv) ऐसे अन्य विषय, जो केन्द्रीय सरकार इस अधिनियम के उपबंधों का प्रभावपूर्ण कार्यान्वयन सुनिश्चित करने के प्रयोजन के लिए आवश्यक या समीचीन समझे ।

(3) यदि केन्द्रीय सरकार इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए ऐसा करना आवश्यक या समीचीन समझती है तो वह, राजपत्र में प्रकाशित

आदेश द्वारा, इस अधिनियम के अधीन केन्द्रीय सरकार को ऐसी शक्तियों और कृत्यों के (जिनके अंतर्गत धारा 5 के अधीन निदेश देने की शक्ति भी है) प्रयोग और निर्वहन के प्रयोजनों के लिए और उपधारा (2) में निर्दिष्ट ऐसे विषयों की बाबत उपाय करने के लिए जो आदेश में उल्लिखित किए जाएं, प्राधिकरण या प्राधिकरणों का ऐसे नाम या नामों से गठन कर सकेगी जो आदेश में विनिर्दिष्ट किए जाएं और केन्द्रीय सरकार के अधीक्षण और नियंत्रण तथा ऐसे आदेश के उपबंधों के अधीन रहते हुए, ऐसा प्राधिकरण या ऐसे प्राधिकरण ऐसी शक्तियों का प्रयोग या ऐसे कृत्यों का निर्वहन कर सकेंगे या ऐसे आदेश में इस प्रकार उल्लिखित उपाय ऐसे कर सकेंगे मानों ऐसा प्राधिकरण या ऐसे प्राधिकरण उन शक्तियों का प्रयोग या उन कृत्यों का निर्वहन करने या ऐसे उपाय करने के लिए इस अधिनियम द्वारा सशक्त किए गए हों ।

4. अधिकारियों की नियुक्ति तथा उनकी शक्तियां और कृत्य – (1) धारा 3 की उपधारा (3) के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, केन्द्रीय सरकार, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए, ऐसे पदाभिधानों सहित ऐसे अधिकारियों की नियुक्ति कर सकेगी और उन्हें इस अधिनियम के अधीन ऐसी शक्तियां और कृत्य सौंप सकेगी जो वह ठीक समझे ।

(2) उपधारा (1) के अधीन नियुक्त अधिकारी, केन्द्रीय सरकार के या यदि उस सरकार द्वारा इस प्रकार निदेश दिया जाए तो, धारा 3 की उपधारा (3) के अधीन गठित प्राधिकरण या प्राधिकरणों, यदि कोई हों, के अथवा किसी अन्य प्राधिकरण या अधिकारी के भी साधारण नियंत्रण और निदेशन के अधीन होंगे ।

5. निदेश देने की शक्ति – केन्द्रीय सरकार, किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, किन्तु इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, इस अधिनियम के अधीन अपनी शक्तियों के प्रयोग और अपने कृत्यों के निर्वहन में किसी व्यक्ति, अधिकारी या प्राधिकरण को निदेश दे सकेगी और ऐसा व्यक्ति, अधिकारी या प्राधिकरण ऐसे निदेशों का अनुपालन करने के लिए आबद्ध होगा ।

स्पष्टीकरण – शंकाओं को दूर करने के लिए यह घोषित किया जाता है कि इस धारा के अधीन निदेश देने की शक्ति के अंतर्गत, –

(क) किसी उद्योग, संक्रिया या प्रक्रिया को बन्द करने, उसका प्रतिषेध या विनियमन करने का निदेश देने की शक्ति है ; या

(ख) विद्युत या जल या किसी अन्य सेवा के प्रदाय को रोकने या विनियमन करने का निदेश देने की शक्ति है ।

[1][**5क. राष्ट्रीय हरित अधिकरण को अपील** – कोई व्यक्ति जो, राष्ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम, 2010 (2010 का 19) के प्रारंभ होने पर या उसके पश्चात् धारा 5 के अधीन जारी किन्हीं निदेशों से व्यथित है, वह राष्ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम, 2010 की धारा 3 के अधीन स्थापित राष्ट्रीय हरित अधिकरण को, उस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार, अपील फाइल कर सकेगा ।]

6. पर्यावरण प्रदूषण का विनियमन करने के लिए नियम – (1) इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, धारा 3 में निर्दिष्ट सभी या किन्हीं विषयों की बाबत नियम बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् :–

(क) विभिन्न क्षेत्रों और प्रयोजनों के लिए वायु, जल या मृदा की क्वालिटी के मानक ;

(ख) भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के लिए विभिन्न पर्यावरण प्रदूषकों की (जिनके अंतर्गत शोर भी है) सांद्रता की अधिकतम अनुज्ञेय सीमा ;

(ग) परिसंकटमय पदार्थों के हथालने के लिए प्रक्रिया और रक्षोपाय ;

---

[1] 2010 के अधिनियम सं. 19 की धारा 36 और अनुसूची 3 द्वारा अंत:स्थापित ।

(घ) भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में परिसंकटमय पदार्थों के हथालने पर प्रतिषेध और निर्बन्धन ;

(ङ) भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में प्रक्रिया और संक्रियाएं चलाने वाले उद्योगों के अवस्थान पर प्रतिषेध और निर्बन्धन ;

(च) ऐसी दुर्घटनाओं के निवारण के लिए जिससे पर्यावरण प्रदूषण हो सकता है और ऐसी दुर्घटनाओं के लिए उपचार उपायों का उपबंध करने के लिए प्रक्रिया और रक्षोपाय ।

अध्याय 3
पर्यावरण प्रदूषण का निवारण, नियंत्रण और उपशमन

7. उद्योग चलाने, संक्रिया, आदि करने वाले व्यक्तियों द्वारा मानकों से अधिक पर्यावरण प्रदूषकों का उत्सर्जन या निस्सारण न होने देना – कोई ऐसा व्यक्ति, जो कोई उद्योग चलाता है, या कोई संक्रिया या प्रक्रिया करता है, ऐसे मानकों से अधिक, जो विहित किए जाएं, किसी पर्यावरण प्रदूषक का निस्सारण या उत्सर्जन नहीं करेगा अथवा निस्सारण या उत्सर्जन करने की अनुज्ञा नहीं देगा ।

8. परिसंकटमय पदार्थों को हथालने वाले व्यक्तियों द्वारा प्रक्रिया संबंधी रक्षोपायों का पालन किया जाना – कोई व्यक्ति किसी परिसंकटमय पदार्थ को ऐसी प्रक्रिया के अनुसार और ऐसे रक्षोपायों का अनुपालन करने के पश्चात् ही, जो विहित किए जाएं, हथालेगा या हथालने देगा, अन्यथा नहीं ।

9. कुछ मामलों में प्राधिकरणों और अभिकरणों को जानकारी का दिया जाना – (1) जहां किसी दुर्घटना या अन्य अप्रत्याशित कार्य या घटना के कारण किसी पर्यावरण प्रदूषक का निस्सारण विहित मानकों से अधिक होता है या होने की आशंका है वहां ऐसे निस्सारण के लिए उत्तरदायी व्यक्ति और उस स्थान का, जहां ऐसा निस्सारण होता है या होने की आशंका है, भारसाधक व्यक्ति, ऐसे निस्सारण के परिणामस्वरूप हुए पर्यावरण प्रदूषण का निवारण करने या उसे कम करने के लिए आबद्ध होगा, और ऐसे प्राधिकरणों को या अभिकरणों को, जो विहित किए जाएं, –

(क) ऐसी घटना के तथ्य की या ऐसी घटना होने की आशंका की जानकारी तुरन्त देगा ; और

(ख) यदि अपेक्षा की जाए तो, सभी सहायता देने के लिए आबद्ध होगा ।

(2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट प्रकार की, किसी घटना के तथ्य की या उसकी आशंका के संबंध में सूचना की प्राप्ति पर, चाहे ऐसी सूचना उस उपधारा के अधीन जानकारी द्वारा मिले या अन्यथा, उपधारा (1) में निर्दिष्ट प्राधिकरण या अभिकरण, यावत्साध्य शीघ्र, ऐसे उपचारी उपाय कराएंगे जो पर्यावरण प्रदूषण का निवारण करने या उसे कम करने के लिए आवश्यक हैं ।

(3) उपधारा (2) में निर्दिष्ट उपचारी उपाय करने के संबंध में किसी प्राधिकरण या अभिकरण द्वारा उपगत व्यय, यदि कोई हों, उस तारीख से जब व्ययों के लिए मांग की जाती है, उस तारीख तक के लिए जब उनका संदाय कर दिया जाता है, ब्याज सहित (ऐसी उचित दर पर जो सरकार, आदेश द्वारा, नियत करे) ऐसे प्राधिकरण या अभिकरण द्वारा संबंधित व्यक्ति से भू-राजस्व की बकाया या लोक मांग के रूप में वसूल किए जा सकेंगे ।

10. प्रवेश और निरीक्षण की शक्तियां – (1) इस धारा के उपबंधों के अधीन रहते हुए, केन्द्रीय सरकार द्वारा इस निमित्त सशक्त किसी व्यक्ति को यह अधिकार होगा कि वह सभी युक्तियुक्त समयों पर ऐसी सहायता के साथ जो वह आवश्यक समझे किसी स्थान में निम्नलिखित प्रयोजन के लिए प्रवेश करे, अर्थात् :–

(क) उसे सौंपे गए केन्द्रीय सरकार के कृत्यों में से किसी का पालन करना ;

(ख) यह अवधारित करने के प्रयोजन के लिए कि क्या ऐसे किन्हीं कृत्यों का पालन किया जाना है और यदि हां तो किस रीति से किया जाना है या क्या इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए नियमों के किन्हीं उपबंधों का या इस अधिनियम के अधीन

तामील की गई सूचना, निकाले गए आदेश, दिए गए निर्देश या अनुदत्त प्राधिकार का पालन किया जा रहा है या किया गया है ;

(ग) किसी उपस्कर, औद्योगिक संयंत्र, अभिलेख, रजिस्टर, दस्तावेज या किसी अन्य सारवान् पदार्थ की जांच या परीक्षा करने के प्रयोजन के लिए अथवा किसी ऐसे भवन की तलाशी लेने के लिए, जिसके संबंध में उसके पास यह विश्वास करने का कारण है कि उसके भीतर इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए नियमों के अधीन कोई अपराध किया गया है या किया जा रहा है या किया जाने वाला है और ऐसे किसी उपस्कर, औद्योगिक संयंत्र, अभिलेख, रजिस्टर, दस्तावेज या अन्य सारवान् पदार्थ का उस दशा में अभिग्रहण करने के लिए, जब उसके पास यह विश्वास करने का कारण है कि उससे इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए नियमों के अधीन दंडनीय किसी अपराध के किए जाने का साक्ष्य दिया जा सकेगा अथवा ऐसा अभिग्रहण पर्यावरण प्रदूषण का निवारण करने या उसे कम करने के लिए आवश्यक है ।

(2) प्रत्येक व्यक्ति जो कोई उद्योग चलाता है, कोई संक्रिया या प्रक्रिया करता है या कोई परिसंकटमय पदार्थ हथालता है, ऐसे व्यक्ति को सभी सहायता देने के लिए आबद्ध होगा, जिसे उपधारा (1) के अधीन केन्द्रीय सरकार ने उस उपधारा के अधीन कृत्यों को करने के लिए सशक्त किया है और यदि वह किसी युक्तियुक्त कारण या प्रतिहेतु के बिना ऐसा करने में असफल रहेगा तो वह इस अधिनियम के अधीन अपराध का दोषी होगा ।

(3) यदि कोई व्यक्ति उपधारा (1) के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा सशक्त किसी व्यक्ति को, उसके कृत्यों के निर्वहन में जानबूझकर विलम्ब करेगा या बाधा पहुंचाएगा तो वह इस अधिनियम के अधीन अपराध का दोषी होगा ।

(4) दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के उपबन्ध या जम्मू-कश्मीर राज्य या किसी ऐसे क्षेत्र में जिसमें वह संहिता प्रवृत्त नहीं है, उस राज्य या क्षेत्र में प्रवृत्त किसी तत्स्थानी विधि के उपबन्ध, जहां

तक हो सके, इस धारा के अधीन किसी तलाशी या अभिग्रहण को वैसे ही लागू होंगे जैसे वे, यथास्थिति, उक्त संहिता की धारा 94 के अधीन या उक्त विधि के तत्स्थानी उपबन्ध के अधीन जारी किए गए वारण्ट के प्राधिकार के अधीन की गई किसी तलाशी या अभिग्रहण को लागू होते हैं ।

11. नमूने लेने की शक्ति और उसके संबंध में अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया – (1) केन्द्रीय सरकार या उसके द्वारा इस निमित्त सशक्त किसी अधिकारी को विश्लेषण के प्रयोजन के लिए किसी कारखाने, परिसर या अन्य स्थान से वायु, जल, मृदा या अन्य पदार्थ के नमूने ऐसी रीति से लेने की शक्ति होगी, जो विहित की जाए ।

(2) उपधारा (1) के अधीन लिए गए किसी नमूने के किसी विश्लेषण का परिणाम किसी विधिक कार्यवाही में साक्ष्य में तब तक ग्राह्य नहीं होगा जब तक उपधारा (3) और उपधारा (4) के उपबंधों का अनुपालन नहीं किया जाता है ।

(3) उपधारा (4) के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, उपधारा (1) के अधीन नमूना लेने वाला व्यक्ति –

(क) इस प्रकार विश्लेषण कराने के अपने आशय की सूचना की ऐसे प्ररूप में जो विहित किया जाए, अधिष्ठाता या उसके अभिकर्ता या उस स्थान के भारसाधक व्यक्ति पर तुरन्त तामील करेगा ;

(ख) अधिष्ठाता या उसके अभिकर्ता या व्यक्ति की उपस्थिति में विश्लेषण के लिए नमूना लेगा ;

(ग) नमूने को आधान या आधानों में रखवाएगा जिसे चिह्नित और सील बन्द किया जाएगा और उस पर नमूना लेने वाला व्यक्ति और अधिष्ठाता या उसका अभिकर्ता या व्यक्ति दोनों हस्ताक्षर करेंगे ;

(घ) आधान या आधानों को धारा 12 के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा स्थापित या मान्यताप्राप्त प्रयोगशाला को अविलम्ब भेजेगा ।

(4) जब उपधारा (1) के अधीन विश्लेषण के लिए कोई नमूना लिया जाता है और नमूना लेने वाला व्यक्ति अधिष्ठाता या उसके अभिकर्ता या व्यक्ति पर उपधारा (3) के खंड (क) के अधीन सूचना की तामील करता है तब –

(क) ऐसे मामले में जहां अधिष्ठाता, उसका अभिकर्ता या व्यक्ति जानबूझकर अनुपस्थित रहता है वहां नमूना लेने वाला व्यक्ति विश्लेषण के लिए नमूना आधान या आधानों में रखवाने के लिए लेगा, जिसे चिह्नित और सील बन्द किया जाएगा और नमूना लेने वाला व्यक्ति भी उस पर हस्ताक्षर करेगा ; और

(ख) ऐसे मामले में जहां नमूना लिए जाने के समय अधिष्ठाता या उसका अभिकर्ता या व्यक्ति उपस्थित रहता है, किन्तु उपधारा (3) के खंड (ग) के अधीन अपेक्षित रूप में नमूने के चिह्नित और सील बन्द आधान या आधानों पर हस्ताक्षर करने से इनकार करता है वहां चिह्नित और सील बन्द आधान या आधानों पर नमूना लेने वाला व्यक्ति हस्ताक्षर करेगा,

और नमूना लेने वाला व्यक्ति आधान और आधानों को धारा 12 के अधीन स्थापित या मान्यताप्राप्त प्रयोगशाला को विश्लेषण के लिए अविलम्ब भेजेगा और ऐसा व्यक्ति धारा 13 के अधीन नियुक्त या मान्यताप्राप्त सरकारी विश्लेषक को अधिष्ठाता या उसके अभिकर्ता या व्यक्ति के, यथास्थिति, जानबूझकर अनुपस्थित रहने अथवा आधान या आधानों पर हस्ताक्षर करने से उसके इनकार करने के बारे में लिखित जानकारी देगा ।

12. पर्यावरण प्रयोगशालाएं – (1) केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, –

(क) एक या अधिक पर्यावरण प्रयोगशालाएं स्थापित कर सकेगी ;

(ख) इस अधिनियम के अधीन किसी पर्यावरण प्रयोगशाला को सौंपे गए कृत्य करने के लिए एक या अधिक प्रयोगशालाओं या संस्थाओं को पर्यावरण प्रयोगशालाओं के रूप में मान्यता दे सकेगी ।

(2) केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, निम्नलिखित को विनिर्दिष्ट करने के लिए नियम बना सकेगी, अर्थात् :–

(क) पर्यावरण प्रयोगशाला के कृत्य ;

(ख) विश्लेषण या परीक्षण के लिए वायु, जल, मृदा या अन्य पदार्थ के नमूने उक्त प्रयोगशाला को भेजने के लिए प्रक्रिया, उस पर प्रयोगशाला की रिपोर्ट का प्ररूप और ऐसी रिपोर्ट के लिए संदेय फीस ;

(ग) ऐसे अन्य विषय जो उस प्रयोगशाला को अपने कृत्य करने के लिए समर्थ बनाने के लिए आवश्यक या समीचीन हैं ।

13. सरकारी विश्लेषक – केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, ऐसे व्यक्तियों को, जिन्हें वह ठीक समझे और जिनके पास विहित अर्हताएं हैं, धारा 12 की उपधारा (1) के अधीन स्थापित या मान्यताप्राप्त किसी पर्यावरण प्रयोगशाला को विश्लेषण के लिए भेजे गए वायु, जल, मृदा या अन्य पदार्थ के नमूनों के विश्लेषण के प्रयोजन के लिए सरकारी विश्लेषक नियुक्त कर सकेगी या मान्यता दे सकेगी ।

14. सरकारी विश्लेषकों की रिपोर्टें – किसी ऐसी दस्तावेज का, जिसका किसी सरकारी विश्लेषक द्वारा हस्ताक्षरित रिपोर्ट होना तात्पर्यित है, इस अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही में उसमें कथित तथ्यों के साक्ष्य के रूप में उपयोग किया जा सकेगा ।

15. अधिनियमों तथा नियमों, आदेशों और निदेशों के उपबंधों के उल्लंघन के लिए शास्ति – (1) जो कोई इस अधिनियम के उपबन्धों या इसके अधीन बनाए गए नियमों या निकाले गए आदेशों या दिए गए निदेशों में से किसी का पालन करने में असफल रहेगा या उल्लंघन करेगा, वह ऐसी प्रत्येक असफलता या उल्लंघन के संबंध में कारावास से, जिसकी अवधि पांच वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, जो एक लाख रुपए तक का हो सकेगा, या दोनों से, और यदि ऐसे असफलता या उल्लंघन चालू रहता है तो अतिरिक्त जुर्माने से, जो ऐसी प्रथम असफलता या उल्लंघन के लिए दोषसिद्धि के पश्चात् ऐसे प्रत्येक दिन

के लिए जिसके दौरान असफलता या उल्लंघन चालू रहता है, पांच हजार रुपए तक का हो सकेगा, दण्डनीय होगा ।

(2) यदि उपधारा (1) में निर्दिष्ट असफलता या उल्लंघन दोषसिद्धि की तारीख के पश्चात्, एक वर्ष की अवधि से आगे भी चालू रहता है तो अपराधी, कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष तक की हो सकेगी, दण्डनीय होगा ।

16. कंपनियों द्वारा अपराध – (1) जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध किसी कंपनी द्वारा किया गया है वहां प्रत्येक व्यक्ति जो उस अपराध के किए जाने के समय उस कंपनी के कारबार के संचालन के लिए उस कंपनी का सीधे भारसाधक और उसके प्रति उत्तरदायी था और साथ ही वह कंपनी भी, ऐसे अपराध के दोषी समझे जाएंगे और तद्नुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और दंडित किए जाने के भागी होंगे :

परन्तु इस उपधारा की कोई बात किसी ऐसे व्यक्ति को इस अधिनियम के अधीन उपबंधित किसी दण्ड का भागी नहीं बनाएगी, यदि वह यह साबित कर देता है कि अपराध उसकी जानकारी के बिना किया गया था या उसने ऐसे अपराध के किए जाने का निवारण करने के लिए सब सम्यक् तत्परता बरती थी ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध किसी कंपनी द्वारा किया गया है और यह साबित हो जाता है कि वह अपराध कंपनी के किसी निदेशक, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी की सहमति या मौनानुकूलता से किया गया है या उस अपराध का किया जाना उसकी किसी उपेक्षा के कारण माना जा सकता है वहां ऐसा निदेशक, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी भी उस अपराध का दोषी समझा जाएगा और तद्नुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और दंडित किए जाने का भागी होगा ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए, –

(क) "कंपनी" से कोई निगमित निकाय अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत फर्म या व्यष्टियों का अन्य संगम है ; तथा

(ख) फर्म के संबंध में, "निदेशक" से उस फर्म का भागीदार अभिप्रेत है ।

17. सरकारी विभागों द्वारा अपराध – (1) जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध सरकार के किसी विभाग द्वारा किया गया है वहां विभागाध्यक्ष उस अपराध का दोषी समझा जाएगा और तद्नुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और दंडित किए जाने का भागी होगा :

परन्तु इस धारा की कोई बात किसी विभागाध्यक्ष को दंड का भागी नहीं बनाएगी, यदि वह यह साबित कर देता है कि अपराध उसकी जानकारी के बिना किया गया था या उसने ऐसे अपराध के किए जाने का निवारण करने के लिए सब सम्यक् तत्परता बरती थी ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध किसी विभागाध्यक्ष द्वारा किया गया है और यह साबित हो जाता है कि वह अपराध विभागाध्यक्ष से भिन्न किसी अधिकारी की सहमति या मौनानुकूलता से किया गया है या उस अपराध का किया जाना उसकी किसी उपेक्षा के कारण माना जा सकता है वहां ऐसा अधिकारी भी उस अपराध का दोषी समझा जाएगा और तद्नुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और दंडित किए जाने का भागी होगा ।

अध्याय 4
प्रकीर्ण

18. सद्भावपूर्वक की गई कार्रवाई के लिए संरक्षण – इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए नियमों या निकाले गए आदेशों या दिए गए निदेशों के अनुसरण में सद्भावपूर्वक की गई या की जाने के लिए आशयित किसी बात के लिए कोई वाद, अभियोजन या अन्य विधिक कार्यवाही, सरकार या सरकार के किसी अधिकारी या अन्य कर्मचारी अथवा इस अधिनियम के अधीन गठित किसी प्राधिकरण या ऐसे प्राधिकरण के किसी सदस्य, अधिकारी या अन्य कर्मचारी के विरुद्ध नहीं होगी ।

19. अपराधों का संज्ञान – कोई न्यायालय इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध का संज्ञान निम्नलिखित द्वारा किए गए परिवाद पर ही करेगा, अन्यथा नहीं, अर्थात् :–

(क) केन्द्रीय सरकार या उस सरकार द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत कोई प्राधिकरण या अधिकारी ; या

(ख) कोई ऐसा व्यक्ति, जिसने अभिकथित अपराध की और परिवाद करने के अपने आशय की, विहित रीति से, कम से कम साठ दिन की सूचना, केन्द्रीय सरकार या पूर्वोक्त रूप में प्राधिकृत प्राधिकरण या अधिकारी को दे दी है ।

20. जानकारी, रिपोर्टें या विवरणियां – केन्द्रीय सरकार, इस अधिनियम के अधीन अपने कृत्यों के संबंध में, समय-समय पर, किसी व्यक्ति, अधिकारी, राज्य सरकार या अन्य प्राधिकरण से अपने को या किसी विहित प्राधिकरण या अधिकारी से रिपोर्टें, विवरणियां, आंकड़े, लेखे और अन्य जानकारी देने की अपेक्षा कर सकेगी और ऐसा व्यक्ति, अधिकारी, राज्य सरकार या अन्य प्राधिकरण ऐसा करने के लिए आबद्ध होगा ।

21. धारा 3 के अधीन गठित प्राधिकरण के सदस्यों, अधिकारियों और कर्मचारियों का लोक सेवक होना – धारा 3 के अधीन गठित प्राधिकरण के, यदि कोई हो, सभी सदस्य और ऐसे प्राधिकरण के सभी अधिकारी और अन्य कर्मचारी जब वे इस अधिनियम के किसी उपबन्ध या इसके अधीन बनाए गए किसी नियम या निकाले गए किसी आदेश या दिए गए निदेश के अनुसरण में कार्य कर रहे हों या जब उसका ऐसा कार्य करना तात्पर्यित हो, भारतीय दण्ड संहिता (1860 का 45) की धारा 21 के अर्थ में लोक सेवक समझे जाएंगे ।

22. अधिकारिता का वर्जन – किसी सिविल न्यायालय, को केन्द्रीय सरकार या किसी अन्य प्राधिकरण या अधिकारी द्वारा, इस अधिनियम द्वारा प्रदत्त किसी शक्ति के अनुसरण में या इसके अधीन कृत्यों के संबंध में की गई किसी बात, कार्रवाई या निकाले गए आदेश या दिए गए

निदेश के संबंध में कोई वाद या कार्यवाही ग्रहण करने की अधिकारिता नहीं होगी ।

23. प्रत्यायोजन करने की शक्ति – धारा 3 की उपधारा (3) के उपबन्धों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, ऐसी शर्तों और निर्बन्धनों के अधीन रहते हुए, जो अधिसूचना में विनिर्दिष्ट किए जाएं, इस अधिनियम के अधीन अपनी ऐसी शक्तियों और कृत्यों को [उस शक्ति को छोड़कर जो धारा 3 की उपधारा (3) के अधीन किसी प्राधिकरण का गठन करने और धारा 25 के अधीन नियम बनाने के लिए है], जो वह आवश्यक या समीचीन समझे, किसी अधिकारी, राज्य सरकार या प्राधिकरण को प्रत्यायोजित कर सकेगी ।

24. अन्य विधियों का प्रभाव – (1) उपधारा (2) के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, इस अधिनियम और इसके अधीन बनाए गए नियमों या निकाले गए आदेशों के उपबन्ध, इस अधिनियम से भिन्न किसी अधिनियमिति में उससे असंगत किसी बात के होते हुए भी, प्रभावी होंगे ।

(2) जहां किसी कार्य या लोप से कोई ऐसा अपराध गठित होता है जो इस अधिनियम के अधीन और किसी अन्य अधिनियम के अधीन भी दण्डनीय है वहां ऐसे अपराध का दोषी पाया गया अपराधी अन्य अधिनियम के अधीन, न कि इस अधिनियम के अधीन, दण्डित किए जाने का भागी होगा ।

25. नियम बनाने की शक्ति – (1) केन्द्रीय सरकार, इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए नियम, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबन्ध किया जा सकेगा, अर्थात् :–

(क) वे मानक जिनसे अधिक पर्यावरण प्रदूषकों का धारा 7 के अधीन निस्सारण या उत्सर्जन नहीं किया जाएगा ;

(ख) वह प्रक्रिया जिसके अनुसार और वे रक्षोपाय जिनके अनुपालन में परिसंकटमय पदार्थों को धारा 8 के अधीन हथाला जाएगा या हथलवाया जाएगा ;

(ग) वे प्राधिकरण या अभिकरण जिनको विहित मानकों से अधिक पर्यावरण प्रदूषकों के निस्सारण होने की या उसके होने की आशंका के तथ्य की सूचना दी जाएगी और जिनको धारा 9 की उपधारा (1) के अधीन सभी सहायता दिया जाना आबद्धकर होगा ।

(घ) वह रीति जिससे विश्लेषण के प्रयोजनों के लिए वायु, जल, मृदा या अन्य पदार्थों के नमूने धारा 11 की उपधारा (1) के अधीन लिए जाएंगे ;

(ङ) वह प्ररूप जिसमें किसी नमूने का विश्लेषण कराने के आशय की सूचना धारा 11 की उपधारा (3) के खण्ड (क) के अधीन दी जाएगी ;

(च) पर्यावरण प्रयोगशालाओं के कृत्य ; विश्लेषण या परीक्षण के लिए वायु, जल, मृदा और अन्य पदार्थों के नमूने ऐसी प्रयोगशालाओं को भेजने के लिए प्रक्रिया ; प्रयोगशाला रिपोर्ट का प्ररूप ; ऐसी रिपोर्ट के लिए संदेय फीस और धारा 12 की उपधारा (2) के अधीन अपने कृत्य करने के लिए प्रयोगशालाओं को समर्थ बनाने के लिए अन्य विषय ;

(छ) धारा 13 के अधीन वायु, जल, मृदा या अन्य पदार्थों के नमूनों के विश्लेषण के प्रयोजन के लिए नियुक्त या मान्यताप्राप्त सरकारी विश्लेषक की अर्हताएं ;

(ज) वह रीति जिससे अपराध की और केन्द्रीय सरकार को परिवाद करने के आशय की सूचना धारा 19 के खण्ड (ख) के अधीन दी जाएगी ;

(झ) वह प्राधिकरण या अधिकारी जिसको रिपोर्टें, विवरणियां, आंकड़े, लेखे और अन्य जानकारी धारा 20 के अधीन दी जाएगी ;

(ञ) कोई अन्य विषय जो विहित किया जाना अपेक्षित है या किया जाए ।

26. इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों का संसद् के समक्ष रखा जाना – इस अधिनियम के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगा । किन्तु नियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रयार्थ उपलब्ध पाठ्य पुस्तकों की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम एवं प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पृष्ठ सं.	पुस्तक की मूल मुद्रित कीमत (रुपयों में)	विशेष छूट के पश्चात् पुस्तक की कीमत (रुपयों में)
1.	विधि शास्त्र – डा. शिवदत्त शर्मा – 2004	501	580	145
2.	निर्णय लेखन – न्या. भगवती प्रसाद बेरी – 2019	190	175	–
3.	भारत का सांविधानिक इतिहास – (103वां संविधान संशोधन तक) – श्री चन्द्रशेखर मिश्र	340	325	–
4.	भारतीय संविधान के प्रमुख तत्व – डा. प्रद्युम्न कुमार त्रिपाठी	906	750	–

अन्य महत्वपूर्ण प्रकाशन

1. निर्वाचन विधि निर्देशिका (भाग-1 तथा भाग-2)	नवीनतम संस्करण, 2024	कीमत रु. 2,500
2. भारत का संविधान (पाकेट एडीशन)	2024	कीमत रु. 325

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
Website : www.lawmin.nic.in
Email : am.vsp-molj@gov.in

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 16288/68

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं - **उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका** और **उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका** का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित महत्वपूर्ण निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः सिविल और दांडिक के चयनित महत्वपूर्ण निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत क्रमशः ` 2,100/-, ` 1,300/- और ` 1,300/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें । साथ ही यह भी अवगत कराया जाता है कि केन्द्रीय अधिनियमों, विधि शब्दावली, विधि पत्रिकाओं और अन्य विधि प्रकाशनों को ऑन लाइन **https://bharatkosh.gov.in/product/product** पर प्राप्त किया जा सकता है ।

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विक्रेता : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष **:** 011-23385259, 23387589, फैक्स **:** 011-23387589, ई-मेल **:** am.vsp-molj@gov.in